धर्मायण

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक : 81(संयुक्तांक)

नवम्बर-दिसम्बर, 2070

2013 ई०

प्रधान सम्पादक

भवनाथ झा

सहायक सम्पादक

श्री सुरेशचन्द्र मिश्र

महावीर मन्दिर प्रकाशन

के लिए

प्रो. काशीनाथ मिश्र

द्वारा प्रकाशित

तथा

प्रकाश ऑफसेट, पटना में मुद्रित

पत्र-सम्पर्कः

धर्मायण,

पाणिनि-परिसर,

बुद्ध-मार्ग,

पटना-800001

दूरभाष – 0612-6453736

E-mail: mahavirmandir@gmail.com

Web: www.mahavirmandirpatna.org

मूल्य : **पन्द्रह रुपये**

विषय-सूची

जानकी-स्तवराज — भवनाथ झा

मण्डन मिश्र का निवास — डॉ० शशिनाथ झा

परिक्रमा/प्रदक्षिणा — सुरेशचन्द्र मिश्र

मन्दिर समाचार परिक्रमा

विराट् रामायण मन्दिर के मॉडल का अनावरण

महावीर मन्दिर में लोकसभा स्पीकर माननीया मीरा कुमार का कार्यक्रम

भगवान् बुद्ध का चरित अब अधूरा नहीं रहा

रामावत संगत

सीताराम विवाहोत्सव का द्विदिवसीय कार्यक्रम आयोजित

गीता-जयन्ती का समारोह

सन्त पलटू दास और उनका दर्शन - गोपाल भारतीय

श्रीरामचरितमानस में जग-दर्शन - डा. राजेश्वर नारायण सिन्हा

जानकी-स्तवराज

(पाण्डुलिपि से सम्पादित)

हिन्दी अनुवाद एवं सम्पादन
भवनाथ झा

संस्कृत भक्ति-काव्य की परम्परा में जानकी स्तवराज का नाम आदर के साथ लिया जाता है। भक्ति साहित्य की रामोपासना शाखा में सगुणोपासना की परम्परा में संस्कृत में भी भुशुण्डी रामायण की रचना हुई है, जिसमें 36000 श्लोक हैं और इसमें पूर्ण रूप से मधुरा भक्ति प्रस्फुटित हुई है। इसी परम्परा में जगज्जननी जानकी की स्तुति प्रस्तुत गीत काव्य में की गयी है। इस रचना के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि यह किसी निष्णात कवि की स्वतन्त्र गीतिकाव्यात्मक रचना है। इसमें कवि ने सीताजी के सभी अंगों का अवदात वर्णन करते हुए स्तुति की है।

मेरी जानकारी में अभीतक यह अप्रकाशित रचना है। महावीर मन्दिर प्रकाशन से प्रकाशित अगस्त्य-संहिता का सम्पादन करते समय अगस्त्य-संहिता की अनेक पाण्डुलिपियाँ एकत्र की गयी थीं, जिनमें एक पाण्डुलिपि में यह रचना मिली है। पाण्डुलिपि में इसे अगस्त्य-संहिता का एक अंश माना गया है, किन्तु इसके अवलोकन से स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत जानकी स्तवराज स्वतन्त्र रचना है। अतः इसे अगस्त्य-संहिता के साथ प्रकाशित न कर यहाँ सुधी पाठकों एवं भक्तों के लिए हिन्दी अनुवाद के साथ पर्यवेषित किया जा रहा है।

इसकी एक पाण्डुलिपि की छायाप्रति हमें मिली थी वह सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में अगस्त्य-संहिता के नाम से एक अपूर्ण पाण्डुलिपि सुरक्षित है, जिसमें एकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण है।

इस पाण्डुलिपि का विवरण इस प्रकार है–

नाम अगस्त्य-संहिता

प्राप्ति-स्थान – सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रवेश संख्या – 104571

विषय – पुराणेतिहास

आधार – कागज।

आकार – 5.5 इंच लम्बाई एवं 4.5 से. मी. चौड़ाई।

पत्र सं. – 11

पत्रांक – 31-41

पृष्ठ सं. - 22

प्रति पृष्ठ पंक्ति सं.- 8

प्रति पंक्ति अक्षर संख्या – 21-23

लिपि – देवनागरी

लिपिकार – अज्ञात

लिपिकाल – अज्ञात

आरम्भ – १श्रीरामचन्द्राभ्यां नमः।श्रुतिरुवाच।

अन्त– श्रीअगस्त्यसंहितायामेकचत्वारिंशोध्यायः।

यद्यपि यह पाण्डुलिपि पत्रांक 31 से आरम्भ है, अतः प्रथम दृष्ट्या खण्डित प्रतीत होती है और अपेक्षा की जाती है कि इसके पूर्व और परवर्ती पृष्ठ कभी थे किन्तु वे नष्ट हो गये हैं। किन्तु गहन विवेचन करने पर यह पाण्डुलिपि स्वतन्त्र एवं पूर्ण प्रतीत होती है। इस अध्याय के आरम्भ में **१श्रीरामचन्द्राभ्यां नमः** है तथा यह पंक्ति पत्र के ऊपरी भाग से आरम्भ है, अर्थात् इसके पूर्व 40वें अध्याय का अन्त नहीं हुआ है।

संख्या 1 भी इस बात का संकेत करती है कि लिपिकार ने पाण्डुलिपि का आरम्भ यहीं से स्वतन्त्र रूप में किया है, न कि विशाल ग्रन्थ के साथ अविच्छिन्न रूप में। पाण्डुलिपि का अन्त पृष्ठ के आधे भाग पर हुआ है, जिसके बाद पृष्ठ रिक्त है। यदि इसके बाद भी 42 अध्याय होता तो पाण्डुलिपि लेखन की शैली के अनुरूप उसी स्थान से लेखन आरम्भ होता अथवा इसी 41वें अध्याय से यदि अगस्त्य-संहिता का अन्त रहता तो अन्त में ग्रन्थ समाप्ति की पुष्पिका रहती, नमस्क्रियात्मक या आशीर्वादात्मक मंगलाचरण होता। साथ ही पत्रांक दुबारा लिखा गया है। पत्र संख्या 35 की वर्द्धित छाया यहाँ प्रमाण के लिए प्रस्तुत है–

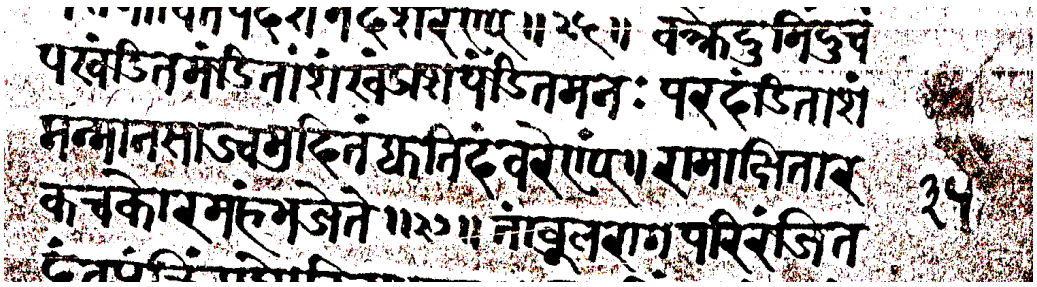

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उक्त पाण्डुलिपि पूर्ण एवं स्वतन्त्र है तथा पाण्डुलिपियों के बंडल में इसके साथ इसी लिपिकार की दूसरी पाण्डुलिपि रहने के कारण बाद में किसी ने भ्रमवशात् लगातार पत्रांक डाल दिया है।

इस अध्याय में सीताजी की स्तुति है, जो काव्यात्मकता की दृष्टि से इतनी उच्च कोटि की रचना है कि इसे आगमशास्त्र के अन्तर्गत न रखकर विशुद्ध भक्ति-काव्य की कोटि में रखना अपेक्षित होगा।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने 'वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य एवं सिद्धान्त' ग्रन्थ में इस अंश का विवेचन 'जानकी-स्तवराज' के नाम से किया है तथा इसे रामोपासना की परम्परा में रसिक-सम्प्रदाय का स्वतन्त्र एवं मान्य ग्रन्थ माना है। आचार्यजी ने उक्त ग्रन्थ में 'जानकी-स्तवराज' के जिस 49वें श्लोक को उद्धृत किया है, वह वर्तमान पाण्डुलिपि में 54वें श्लोक के रूप में उपलब्ध है।

यद्यपि यहाँ भी इसे आगमशास्त्र के अन्तर्गत सम्मिलित करने का अथक प्रयास किया गया है और सम्पूर्ण स्तुति को श्रुति, संकर्षण के संवाद के रूप में योजित कर शिव के मुख से यह स्तुति करायी गयी है। इस स्तुति में सीता के पादादिकेशान्तवर्णन है। पादादिकेशान्तवर्ण के द्वारा स्तुति की परम्परा भक्ति-काव्यों में प्रसिद्ध रही है। आदि शंकराचार्य द्वारा विरचित विष्णुपादादिकेशान्त वर्णन प्रसिद्ध है। अतः इसे परवर्ती कवि की रचना मानना उचित होगा।

जानकी-स्तवराज

श्रीरामचन्द्राभ्यां नमः।
श्रुतिरुवाच
कीदृशः स्तवराजोऽयं केन प्रोक्तः सुरेश्वर।
कथ्यतां कृपया देव जानकीरूपबोधकः॥१॥

श्रुतियाँ बोलीं– हे देवाधिदेव! जानकी के स्वरूप का बोध करानेवाली यह कैसी स्तुति है? यह स्तुति किसके द्वारा की गयी? यह सब मुझे बतलायें।

संकर्षण उवाच
ब्रवीमि स्तवराजं ते श्रीशिवेन प्रभाषितम्।
श्रुतं श्रीवक्त्रयोर्दिव्यं पावनानां च पावनम्॥२॥

संकर्षण ने कहा– भगवान् शंकर ने जो स्तुति की थी, उसे मैंने पार्वती के मुख से सुनी। यह पवित्रों को भी पवित्र करने वाली स्तुति है। यह मैं तुम्हें सुना रहा हूँ।

चकाराराधनं तस्याः मन्त्रराजेन भक्तितः।
कदाचिच्छ्रीशिवो रूपं ज्ञातुमिच्छुर्हरेः पदम्॥३॥

किसी समय भगवान् शंकर श्रीजानकी के स्वरूप जानने तथा भगवान् विष्णु के परम पद पाने की अभिलाषा से मन्त्रराज से जानकी की आराधना करने लगे।

दिव्यवर्षशतं वेदविधिना विधिवेदिना।
अजापि परमं जाप्यं रहःस्थितेन चेतसा॥४॥

उन्होंने सौ दिव्य वर्षों तक विधानों को जाननेवाले वेदों की विधि से एकान्त में अवस्थित होकर परम-मन्त्र का जप किया।

प्रसन्नोऽभूत्तदा देवः श्रीरामः करुणाकरः।
मन्त्रराजेन रूपेण भजनीयः सतां प्रभुः॥५॥

तब करुणा करनेवाले भगवान् श्रीराम, जो मन्त्रराज के रूप में सज्जनों के आराध्य हैं, वे प्रसन्न हुए।

द्रष्टुमिच्छति यद्रूपं मदीयं भावनास्पदम्।
आह्लादिनीं परां शक्तिं स्तूयाः शास्त्रसंमताम्॥६॥
तदाराध्यस्तदारामस्तदाधीनस्तया विना।
तिष्ठामि न क्षणं शम्भो जीवनं परमं मम॥७॥

श्रीराम ने कहा कि यदि आप मेरे सांसारिक सगुण स्वरूप का दर्शन करना चाहते हैं, तो सुख उत्पन्न करनेवाली, शास्त्रों के द्वारा सम्मत तथा परम शक्ति-स्वरूपा जानकी की स्तुति करें। हे शंकर! मैं उस परम शक्ति का आराध्य हूँ, वह शक्ति मुझमें रमण करती है, मैं उसके वशीभूत हूँ तथा उस शक्ति के विना मैं एक क्षण भी नहीं रहता हूँ। वह मेरा परम जीवन है।

इत्युक्त्वा देवदेवेशो वशीकरणमात्मनः।
पश्यतस्तस्य रूपस्थमन्तर्धानं दधे प्रभुः॥८॥

ऐसा कहकर प्रभु देवेश श्रीराम भगवान् शंकर के देखते देखते आत्मा को वशीकृत करनेवाले रूप में अन्तर्धान हो गये।

श्रुत्वा रूपं तदा शम्भुस्तस्याः श्रीहरिवक्त्रतः।
अचिन्तयत्समाधाय मनःकरणमात्मनः॥९॥

इसके बाद श्रीहरि श्रीराम के मुख से जानकी के स्वरूप का वर्णन सुनकर समाधि लगाकर अपने अन्तःकरण में चिन्तन करने लगे।

अस्फुरत् कृपया तस्य रूपं तस्याः परात्परम्।
दुर्निरीक्ष्यं दुराराध्यं सात्वतां हृदयङ्गमम्॥१०॥
आश्रयं सर्वलोकानां ध्येयं योगविदान्तथा।
आराध्यं मुनिमुख्यानां सेव्यं संयमिनां सताम्॥११॥

श्रीराम की कृपा से जानकी के परात्पर स्वरूप का स्फुरण हुआ। वह रूप कठिनता से दिखाई पड़ता था, कठिनता से आराध्य था तथा उपासकों के द्वारा हृदयङ्गम करने योग्य था। वह स्वरूप सभी लोकों का आश्रय तथा योगियों के द्वारा ध्यान लगाने योग्य तथा श्रेष्ठ मुनियों द्वारा आराधना करने योग्य एवं सज्जन संयमियों द्वारा पूजनीय था।

दृष्ट्वाश्चर्यमयं सर्वं रूपन्तस्याः सुरेश्वरः।
तुष्टाव जानकीं भक्त्या मूर्तिमतीं च भावनाम्॥१२॥

श्रीजानकी के उस आश्चर्यमय स्वरूप को देखकर शंकर भावना की प्रतिमूर्ति जानकी की स्तुति करने लगे।

शिव उवाच

वन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं
कैशोरसौरभसमाहृतयोगिचित्तम् ।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं
सन्मानसालिपरिपीतपरागपुञ्जम् ॥१३॥

शिव बोले– विदेह राजा जनक की पुत्री जानकी के उस चरणकमल की वन्दना करता हूँ, जिस नव प्रस्फुटित कमल की सुगन्धि से योगियों का चित्त आकृष्ट हो गया है। वह चरणकमल तीनों तापों को नाश करने में समर्थ है। मुनि रूपी हंसों से वह हमेशा सेवित है तथा सज्जन के मन रूपी भ्रमर इसके पराग समूह का पान करते हैं।

पादस्य यावकरसेन तलं सुरक्तं
सौभाग्यभाजनमिदं हि परं जनानाम्।
पुञ्जीकृतं सुभजतां तव देवि नित्यं
दत्ताश्रयः सुमनसां मनसानुरागः॥१४॥

हे देवि! महावर के रस से रक्तिम आपका जो पादतल है, वह नित्य रूप से भक्त लोगों के लिए एकत्र किया हुआ सौभाग्य प्रदान करनेवाला है और वह देवताओं तथा सज्जनों के मन का अनुराग भी वहाँ अपना आश्रय लेता है।

पादाङ्गुलीनखरुचिस्तव देवि रम्या
योगीन्द्रवृन्दमनसा विशदा विभाव्या।

त्रैतापशान्त्युपशमाय शशांककान्ति-
र्दोषेण किं समुपयाति तुलां युता सा॥१५॥

आपके पैरों की अंगुलियों के नख की शोभा रमणीय है, जिसे श्रेष्ठ योगिगण अपने विस्तारित मन से ही जान पाते हैं। इस संसार के तीनों प्रकार के तापों की शान्ति के लिए वह चन्द्रमा की कान्ति के समान है। (चन्द्रमा की कान्ति को यदि दोषपूर्ण मानें फिर भी) उस दोष से युक्त होने पर क्या वह तुला राशि पर आरूढ़ हो सकता है?

नित्यं भजन्ति जनता जगतां जनन्याः
पादारविन्दमकरन्दमिहोपहारैः ।
विन्देत साधनशतैः परमे तदेव
तासां सदासवमनोऽनिशयोगिसाध्यम्॥१६॥

हे परमशक्ति-स्वरूपे! नित्य रूप से जन समूह उपहारों के द्वारा संसार की माता आपके चरणकमल से निःसृत अमृत की आराधना करते हैं। वे सैकड़ो साधनों से उसी मकरन्द को प्राप्त करते हैं, किन्तु उनमें से जो हमेशा उस मादक रस में चित्त लगाये रहते हैं, वे निरन्तर योगाभ्यास से साध्य रस को प्राप्त करते हैं।

कुर्वन्ति विष्णुहरवारिजभूपमुख्याः
ज्ञातुं रहस्यमिति मानुषदेहधर्त्तुः।
कान्तस्य ते चरणपंकजयुग्मसेवां
मातर्नमोऽमरमुनीडितपादपीठे ॥17॥

हे मातः ! विष्णु, शंकर एवं ब्रह्मा आदि जो पृथ्वी का पालन करनेवाले देव हैं, वे सभी मनुष्य रूप धारण वाले आपके पति श्रीराम की सेवा आपके रहस्य को जानने के लिए करते हैं। आपके चरणपीठ की वन्दना देवता और मुनिगण करते हैं, ऐसी माता को प्रणाम करता हूँ।

मञ्जीरधीरनिनदं कलहंसकेली
हास्यायसा भवति भावयतां त्वदीयम्।
किञ्चापरं रसिकमौलिमनोनिहर्त्तुं
दृष्टं मया परमकौशलमत्र तस्याः॥१८॥

मंजीरा के गम्भीर स्वर से निनादित तथा सुन्दर हंस की क्रीडाओं तथा विलास से शोभित आपका एक चरण भक्ति की भावना करनेवालों के लिए है तो दूसरा चरण रसिकों में श्रेष्ठ जनों के मन को हरण करने के लिए है। मैंने उस परम शक्ति की यह श्रेष्ठ कुशलता देख ली है।।18।।

सिद्धेशबुद्धिवररंजितगूढगुल्फौ
पादारविन्दयुगलौ जनतापवर्गौ।
विन्दन्ति ते त्रिभुवनेश्वरि भावसिद्धिं
ध्यायन्ति ये निखिलसौभगभागभाजौ॥१९॥

हे त्रिभुवन की देवि! सिद्धों, देवताओं और बुद्धिमान् जनों के झुकने के कारण प्रतिबिम्ब से आपकी दोनों सघन पिंडलियाँ रक्तिम हो गयीं हैं। वे दोनों चरणकमल जनसमूह को मोक्ष देने के लिए ही तो है! जो ऐसे समस्त सौभाग्य के आधार उन दोनों चरणकमलों का ध्यान करते हैं, वे भक्ति की सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।।19।।

हेमाभिवन्दितविभूषणभूषितन्ते
त्रैलोक्यतेज इव मञ्जुलपुञ्जभूतम्।
भाति स्म सुन्दरि पदं सरसीरुहाभं
भीताभयप्रदमनन्तमनोऽलिधाम ॥२०॥

हे सुन्दरी सीते! स्वर्ण भी जिस पदार्थ की वन्दना करे, उससे निर्मित भूषणों से आपका पद आभूषित है। वह कमल के समान इस प्रकार शोभित हो रहा है, जैसे तीनों लोकों का तेज सुन्दर रूप में एकत्र हो गया हो। वह पद भयभीतों को अभय प्रदान करनेवाला और अनन्त मन रूपी भ्रमर का स्थान है।।20।।

चक्राभहारि सुनितम्बयुगं भवत्या
ध्येयं सुधीभिरभितोरसनाभिषिक्तम्।
ध्यानास्पदं रघुपतेर्मनसो मुनीनां
भावैकगम्यममरेशनताङ्घ्रिपद्मे ॥२१॥

हे सीते! देवताओं के स्वामी भी आपके चरणकमलों में झुके हुए हैं। आपके चक्र की कान्ति को भी जीत लेनेवाले तथा ज्ञानियों के ध्येय आपके दोनों नितम्ब हैं, जो चारों ओर से कमरधनी से घिरे हुए हैं। यह रघुपति तथा मुनियों का मन इसका ध्यान करते हैं। यह केवल भाव के द्वारा जाने जा सकते हैं।

कौशेयवस्त्रपरिणद्धमल तं ते
कार्त्तस्वराशनिमणिप्रसरप्रवेकैः ।
रत्नोत्तमैः रसनया ग्रहकान्तिमद्भि-
र्भास्वन्तमारचितया स्वधियन्ति मध्यम्॥२१॥

हे मातः आपके शरीर का मध्य भाग पहने गये रेशमी वस्त्र से अलंकृत है तथा ग्रहों के समान चमकते हुए, सुवर्ण, विद्युत् और मणि समूह से भी विशिष्ट उत्तम रत्नों से शोभित है तथा इस पर करधनी लगी हुई है।

अश्वत्थपत्रनिभमम्ब धियोदरन्ते
भाव्यं भवाब्धितरिकेवलकालनाशे।
भूयोऽनभावि जननीजठरे निवास-
स्तेषां मनो धरणिजेऽत्र सुलग्नमासीत्॥२२॥

हे धरती की पुत्री, सीते! हे मातः! आपके उदर जैसे पीपल के पत्र के समान है। वह काल के अन्त में संसार रूपी समुद्र को पार लगाने के लिए एकमात्र नौका है। जिसका मन इसमें लग गया है, उसे पुनः माता के जठर में रहना नहीं होता है।

नाभीह्रदं हरविरञ्चिमनःकृशांशो-
सृष्टिप्रदं प्रचलितं त्रिवलीतरङ्गम्।
राजीसु शैवलनिभं अभिभूतरोम्णां
शान्त्यै तवाम्ब जगतामतिभावयामः॥२३॥

आपकी नाभि रूपी ह्रद, शंकर, ब्रह्मा, मन एवं नवीन चन्द्रमा को उत्पन्न करनेवाला है। इस ह्रद में कमल की पंक्तियों के बीच शैवाल के समान आपकी त्रिवली का तरंग चंचल हो रहा है। हे माता! इस संसार

में जिनका रोम भी कष्ट में हो अर्थात् अल्प कष्टवालों की भी शान्ति के लिए आपका यह नाभि रूपी ह्रद है, ऐसी कल्पना मैं कर रहा हूँ।

नीलाभ्रकञ्चुकमणीन्द्रसमूहनिष्कै-
र्वक्षोजयुग्ममतितुङ्गमल तं ते।
हारैर्मनोहरतरैस्तरुणि क्षितीशे
सौन्दर्यवारिनिधिवारितरङ्गमङ्गम्॥२४॥

हे तरुण वय वाली! पृथ्वी की स्वामिनी! नीले मेघ के समान कंचुक एवं श्रेष्ठ मणियों के समूह वाले अत्यन्त मनोहर कण्ठहारों से आपके अति उत्तुंग एवं सौन्दर्य रूपी समुद्र के जल से तरंगायमान दोनों स्तन अलंकृत हैं।

बाहू मृणालमदखण्डनपण्डितौ ते
भीताभयप्रदवदान्यतमौ जनानाम्।
रुक्माङ्गदाङ्कितविटङ्कितमुद्रिकौ ते
हैरण्यकङ्कणधृतावलयौ भजामः॥२५॥

आपकी दोनों बाहें कमलनाल के घमण्ड को चूर करने में निपुण हैं। वे बाहें भयभीत जनों को अभय प्रदान करने में भी श्रेष्ठ हैं। स्वर्णनिर्मित बाजूबंद से विलसित तथा अंगूठी से मुद्रित दोनों बाहें, जिनमें स्वर्णनिर्मित कंगन और वलय हैं, उन्हें मैं भजता हूँ।

कण्ठं कपोततरुणीगलकान्तिमोषं
भूषैरनेकविधभूषितमम्ब तुभ्यम्।
ध्यायेम मानसविशुद्धिकृते कृपालो
योगेशभावितपदं शमदं शरण्यम्॥२६॥

हे मातः ! हे कृपा करनेवाली! अनेक भूषणों से भूषित आपका कण्ठ तो तरुणी कबूतरी के गले की कान्ति चुरानेवाला है। मन को विशुद्ध करनेवाली तुम्हें प्रणाम। हमलोग योगेश शिव के द्वारा आराधित, शान्ति देनेवाले, तथा शरण देनेवाले आपके पद का ध्यान करते हैं।

वक्त्रेन्दुमिन्दुचयखण्डितमण्डितांशं
खण्डाशपण्डितमनःपरदण्डिताशम्।
मन्मानसाब्जमुदितं गतिदं वरेण्यं
रामाक्षितारकचकोरमहं भजेम॥२७॥

हे सीते! चन्द्रमा के समान आपका मुख चन्द्रमा के समूह की कान्ति के एक अंश से मण्डित अवयवों से युक्त है, जो निराशा से ग्रस्त विद्वानों के मन के लिए आशा जगानेवाला दूसरा लाठी का सहारा है। वह मुख मेरे मन रूपी कमल को प्रफुल्लित करनेवाला है। वह गति देनेवाला, श्रेष्ठ तथा श्रीराम की आँख रूपी तारा को निहारनेवाला चकोर पक्षी है। इस मुख को मैं भजता हूँ।

ताम्बूलरागपरिरङ्ग्रभतदन्तपंक्तिं
प्रद्योतिताधरमधुःकृतबिम्बबिम्बम्।
ईषत्स्मितं द्युतिकटाक्षविकाशिताशं
वक्त्रं परेशनयनास्पदमहं निरीक्ष्ये॥२८॥

हे सीते! ताम्बूल के रंग से रँगी हुई आपकी दन्तपंक्ति पर चमकते हुए अधरों के रस प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। हल्की मुसकुराहट वाली वह दन्तपंक्ति अपनी आभा के थोड़े से बाँकपन से दिशाओं को विकसित कर रही है। ऐसी दन्तपंक्ति से युक्त आपके उस मुख का मैं दर्शन कर रहा हूँ, जो परम प्रभु श्रीराम की दृष्टि का निवास स्थान है।

सेवन्ति सादरमहर्निशमासमन्ता-
द्वैरञ्च्यभोगभुवनानि रहस्यमस्याः।
पादारविन्दयुगलं नु नमन्ति तेषां
ये वै हरेन्द्रजनुषा सफलं भवेत्किम्॥२३॥

ब्रह्मा के जो भी भोग भुवन हैं, वे श्रीसीता के रहस्य को जानने के लिए आदरपूर्वक दिनरात हर प्रकार से उनकी सेवा करते हैं। वे उनके दोनों चरणकमलों का नमन भगवान् शंकर के राजा श्रीरामचन्द्र की सृष्टि के माध्यम से करते हैं, तो भला वे क्या सफल हो पायेंगे?

नासाग्रमौक्तिकफलं फलदं परेशे
ध्यायन्ति ते जननि जाड्यविनाशहेतोः।
त्रैलोक्यनिर्मलपदं सुखदं त्वदीयं
स्वेच्छाभिकांक्षितमिदं बहुशो रसज्ञाः॥३०॥

हे पराशक्ति-स्वरूपिणि देवि! आपके नाक के अगले भाग पर जो मोती का दाना है, संसार के लोग उस फल देनेवाले का ध्यान जड़ता के नाश के लिए करते हैं। भक्तिरस के अनेक रसिक तीनों लोकों में निर्मल आपका सुखद एवं अपनी इच्छा से अभीष्ट जो परम धाम है, उसका ध्यान करते हैं।

ज्ञानं निरञ्जनमिदं विवदन्ति के ये
मुह्यन्ति सूरिनिबहास्तरुणीकटाक्षैः।
नालोकयन्ति नितरां तव देवि ताव-
द्दीर्घ्यायताक्षयुगमञ्जनरञ्जितं ते॥३१॥

ज्ञान को निरंजन अर्थात् विना काजल वाला कहते हुए वे ही ज्ञानीगण विवाद करते हैं, जो तरुणियों के कटाक्ष से मोहित हो जाते हैं। हे देवि! वे बिल्कुल आपकी उन दोनों बड़ी बड़ी आँखों को नहीं देखते हैं, जिनपर काजल लगे हुए हैं।

भ्रूवल्लरीविलसितं जगदाहुरीशे
व्यासादयो मुनिवरास्तु त एव नित्यम्।
नाशाय तस्य तरुणीतिलके त्वदीया
पाशीकृता हरिमनोमृगबन्धनाय॥३२॥

हे स्वामिनि! आपके भौंह रूपी लता से विलसित यह संसार है, ऐसा व्यास आदि श्रेष्ठमुनियों ने कहा है, अतः वे संसार को नित्य मानते हैं। उस संसार के नाश अर्थात् पुनर्जन्म के नाश के लिए तरुणियों के करने योग्य आपका जो तिलक है उसमें हरि श्रीराम के मन रूपी हिरन को बाँध देने के लिए यह लता जैसे रस्सी बन गयी है।

भालं विशालमतिसौभगभाजनन्ते
सिन्दूरविन्दुरुचिरद्युतिदीप्तिमन्तम्।

पिण्डीकृतं किमुत राग इहैव तस्मिन्
प्रद्योतिते जननिजागतजन्मभाजाम्॥३३॥

हे सनातनि सीते! आपका यह विशाल भाल अत्यन्त सौभाग्यशाली है, जो सिन्दूर के बिन्दु से सुन्दर तथा दीप्तिमान् हो रहा है। क्या यहीं वह स्थान है, जहाँ जिसके द्योतित हो जाने पर माता के गर्भ से जन्म लेनेवाले सांसारिकों का अनुराग पुंजीभूत हो जाता है?

आदर्शवर्त्तुलकपोलविलोललोलं
कर्णावतंसयुगलं जनजाड्यनाशम्।
सूर्यादिकान्तिहरमाश्रयमोजसान्ते
तीव्रं धिया धरणिजे स्वधियन्ति धीराः॥३४॥

हे पृथ्वी की पुत्रि! सीते! दर्पण के समान गोल आपके चंचल गालों से हिलाये जाते हुए आपके दोनों कर्णाभूषण लोगों की जडता का नाश करनेवाले हैं।वे कर्णाभूषण सूर्य आदि की भी कान्ति को हरनेवाले हैं और ओज के आश्रय हैं। समझदार लोग उसे अपनी बुद्धि से तीव्र गति से जान लेते हैं।

कालो बिभेति जगतामतिभक्षकस्ते
जीवान्तको भवदृशामगुणायतोऽसौ।
सर्वातिवल्लभतया भजनीयरूपं
मन्यामहे हरिरिति श्रुतिभूषसारम्॥३५॥

जीवों का नाश करनेवाला तथा संसार का भक्षण करनेवाला जो काल है वह संसार का विवेचन करनेवाले विद्वानों के मत से गुणहीन है। वह काल भी आपसे डरता है। सबसे प्रिय होने के कारण भजनीय स्वरूप में केवल हरि श्रीराम हैं, ऐसा कथन वेदों की तरह आपके दोनों कानों के आभूषणों का भी सार तत्त्व है।

नाशाय भामिनि भवाब्धगतेस्त्वदीयं
ध्यायन्ति धीरनिकरा नितरां गतिं ते।
मत्तेभगामिनि रहो निलयं विधाय
प्रद्योतते हृदि कदापि यदा मदीये॥३६॥

हे मदमत्त हस्तिशावक के समान गति वाली सीते! संसार रूपी सागर की गति के विनाश के लिए समझदार लोग आपकी इस गति का ध्यान एकान्त में आवास बनाकर करते हैं। आपकी वह गति मेरे मेरे हृदय में भी कभी कभार कौंध जाती है।

मत्तेभमन्दगतिरासविलासहास्ये
हस्तप्रदो मलनमिषादमुमूक वीक्ष्य।
मोचाश्रुशोचनभयादजजन्म यस्मात्
कम्पन्ति भर्त्तिकपितामवलोक्य यस्याः॥३७॥

(दूसरा पाठ अनुपलब्ध होने के कारण पाठोद्धार के अभाव में अर्थ अस्पष्ट प्रतीत हो रहा है। सं.)

सीमन्तमम्ब तव सुन्दरतानिसीमं
मुक्ताविभूषितमलं समभागभाजम्।
निःसीमतापदकृते यतयो यजन्ति
जानीमहे महितवन्दितसीममूर्त्ते॥३८॥

हे अम्ब! आपका निर्मल सीमन्त जो समान भागों में विभक्त है तथा मोती से विभूषित है, वह सौन्दर्य की पराकाष्ठा है। आपका का यह सीमन्त महिमामण्डित एवं वन्दित है, अतः यतिगण जो निःसीम मोक्ष के लिये यत्न करते हैं, वहाँ मैं मानता हूँ कि वे आपके सीमन्त के लिए ही यत्न करते हैं!

कालाद्विभीतिर्भजतां न हि भोगभिन्ना
पायात्परेश्वरि सतामवती सदा नः।
एणीदृशस्तव विशालतरा तु वेणी
सन्दर्भभागसदृशा सुदृशस्त्रिलोक्याम्॥३९॥

हे परेश्वरि! जो आपका भजन करते हैं, उन्हें काल का भय नहीं रह जाता है, क्योंकि आप भोगों से परे हैं तथा सज्जनों की रक्षा करती हैं। आप सदा हमारी रक्षा करें। हिरणी के समान सुन्दर आँखों वाली आपकी विशाल वेणी अद्वैत के विभाजन अर्थात् द्वैत के समान इस संसार में प्रतीत हो रही है।

शाटी सुसूक्ष्मनितरातिगतातिनीला
सौवर्णसूत्रकलिता कृपया धृता ते।
भर्त्तुस्वरूपमनुभावयता जनानां
प्रीत्यै करोषि तदिहापि पदाभिधानम्॥४०॥

हे सीते! आपकी साड़ी अत्यन्त सूक्ष्म है, अत्यन्त चंचल है तथा नीले रंग की है। उस साड़ी पर सुवर्ण के धागे से कशीदागिरी भी की गई है और उसे आपने अपने पति श्रीराम के नीले स्वरूप की अनुकृति करती हुई कृपापूर्वक धारण की है। यह सबकुछ आपने भक्तजनों की प्रीति के लिए किया है, तब यहाँ मेरे पास भी आप कृपापूर्वक अपने चरण रखें।

वारे गिरां गुणनिधे श्रुतयो वदन्ति
रूपन्त्वदीयमपरं मनसाप्यगम्यम्।
साक्षात्कथं सरसिजाक्षि भवेदृते ते
बुद्धौ कृपां तनुकृशोदरि मादृशं तत्॥४१॥

हे वारे! हे शब्दों के गुणों की निधि! वेद कहते हैं कि आपका विशिष्ट स्वरूप मन के द्वारा भी अगम्य है। हे कमल के समान आँखों वाली! हे तनुकृशोदरि! तब इस संसार में आपका साक्षात्कार मेरी बुद्धि में मेरे जैसे लोगों के लिए आपकी कृपा के विना कैसे होगा?

किञ्चित्रमत्र जननि प्रभया प्रकाश्यं
विश्वं वदन्ति मुनयस्तव देवि देवाः।
जातस्त्रयस्त्रिभुवनैर्गुणतोऽभिबन्द्या
स्त्राणादिकर्मविभवः परमस्य यस्याः॥४२॥

हे माँ! यह क्या विचित्र बात है कि तीनों देव ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तथा तीनों भुवनों के गुणों-सत्त्व रजस् एवं तमस् से युक्त होने के कारण वन्दित देवतागण तथा अन्य मुनिगण इस संसार को आपकी ज्योति से प्रकाशित मानते हैं, किन्तु परम देव श्रीराम में रक्षा आदि करने की जो शक्ति है, वह तो आपकी ही है।

वेदास्तवाम्ब विवदन्ति निजस्वरूपं
नित्यानुभूतिभवभावपरापरेशे।

निर्णेतुमद्य यतयस्तपसा यतन्ते
बोधाय पादसरसीरुहयुग्मभृंगा।।४३।।

हे अम्ब! हे स्वामिनि! आप नित्य अनुभूति स्वरूप हैं या आपका सांसारिक स्वरूप है, आप परा हैं या अपरा हैं, आपके स्वरूप के विषय में सभी वेद विवाद करते रहते हैं। आज आपके दोनों चरण-कमल पर लुब्ध भ्रमर के रूप में यतिगण इसके ज्ञान के लिए तथा निर्णय करने के लिए तपस्या के द्वारा यत्न करते हैं।

कुर्वन्ति संयममहो किमुतास्ति नास्ति
प्रायेण वाल्मिकमुखाः कविराजराजाः।
आलोक्यते कटिमनोरपि सूक्ष्मभाज-
भावं मलोलगत नासति भावशक्तिः।।४४।।

वाल्मीकि आदि जो कविसम्राट् हैं, वे प्रायः यही दृढ़ निश्चय करने में लगे रहे कि आपका स्वरूप सांसारिक है या अलौकिक है! (इसके बाद का पाठ अस्पष्ट है। – सं.)

जातन्त्वदेव जगतां नितरां निधानं
मत्वा महीं तदिदमम्ब श्रुतं श्रुतीनाम्।
सर्वं यतः खलु विचेष्टितमाद्यशक्तेः
कार्ये हि कारणगुणानवलम्ब्य विन्द्यात्।।४५।।

हे सीते! आपसे ही तो सभी लोकों के आश्रय भली भाँति उत्पन्न हुए हैं। तब इस पृथ्वी को भी वहीं आश्रय मानकर वेदों का तात्पर्य है कि चूँकि संसार के सबकुछ आदिशक्ति के द्वारा कार्य किए गये हैं; अतः कार्य में कारण के गुण आ ही जाते हैं।

जानीमहे जननि ते नयनारविन्द
उन्मीलिते जनजगत्क्षयकृन्निमीले।
वैषम्यशून्यसमतां समुपागते किं
स्यादेव पालनमशंसयमस्य नूनम्।।४६।।

हे मातः! हम सब जानते हैं कि आपके नयन-कमल जब खुलते हैं तब लोगों की उत्पत्ति होती है और आँखें ही बंद होने पर संहार करती हैं। तब क्या इन विषमताओं उन्मीलन और निमीलन से रहित स्थिति में समता उत्पन्न होने पर निःसन्देह इसका पालन होता है।

ज्ञानं त्वदीयमपरं चरितं विशाल-
माबन्धवे ननु निजे प्रकटीकरोषि।
प्रेम्णैव तैः प्रथमतः परमाणभावं
भाव्यं पदाब्जमनिशं स्वजनैरतस्ते।।४७।।

हे देवि! आपका ज्ञान अतुलनीय है, चरित विशाल है आप अपना ज्ञान और चरित के अपने बन्धुओं के लिए केवल प्रेम से ही प्रकट करती हैं। अतः इन स्वजनों को सबसे पहले आपके चरण कमलों में निरन्तर परम जीवन (प्राण) की भावना करनी चाहिए।

येषामयं परमवस्तुतया जनानां
विन्दन्ति ते जनकजे चरणारविन्दम्।

सर्वं समक्षमिह कर्ममनोवचोभि-
र्ब्रह्मस्वरूपमतिदुर्ल्लभतानुसेव्या॥४८॥

जिन लोगों में परम वस्तु के रूप में ऐसा भाव है, वे आपके चरण-कमलों को प्राप्त करते हैं। उन्हें ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है तथा इस संसार में कर्म, मन तथा ज्ञान से अतिदुर्ल्लभ वस्तुएँ भी प्राप्त हो जाती है।

किं दुर्ल्लभं चरणपङ्कजसेवया ते
पूर्णारमन्ति रमणीयतया त्रिलोक्याम्।
वस्तुप्रकाशनिबहं हृदयं त्वदीयं
तेषामहो किमुत साधनकोटियत्नैः॥४९॥

हे देवि! आपके चरण-कमल की सेवा करने से कौन सी वस्तु दुर्ल्लभ है? वे पूर्ण होकर तीनों लोकों में रमणीय होकर विचरण करने लगते हैं। हे सीते! तत्त्व और प्रकाश का स्थान तो आपका हृदय है। उस हृदय के सेवकों के लिए अन्य करोड़ों साधनों से प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता होगी?

धन्यास्त एव तव देवि पदारविन्दे
स्पन्दायमानमकरन्दमहर्निशं ये।
भृङ्गायमानमनसो नितरां भजन्ते
भाववबोधनिपुणा परदेवतायाः॥५०॥

हे देवि! आप परदेवता हैं। आपके चरण-कमलों में हिलते हुए पराग-कणों पर भ्रमर के समान दत्तचित्त होकर जो भाव और ज्ञान में कुशल होकर उसकी सेवा करते हैं, वे ही धन्य हैं।

पादाब्जरागपरिरञ्जितचित्रभृङ्गो
येषां समक्षमिह जातमिदं स्वरूपम्।
तेषां न किं प्रवद ते परितोऽवशिष्टं
साध्यं भवेदिह परत्र न किञ्चिदन्यत्॥५१॥

हे देवि! आपके चरण-कमल के पराग से रँगे हुए जिनके हृदय रूपी भ्रमर हैं, ऐसे भक्तों के समक्ष आपका यह स्वरूप प्रकट हुआ है, उन्हें क्या नहीं मिल गया? यह कहो कि उनके चारों ओर इस संसार में तथा परलोक में भी प्राप्य वस्तु इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं रहा।

चुम्बन्ति चिद्वनमहो मकरन्दमस्य
देवैर्मुनीन्द्रनिबहैरति दुर्ल्लभन्ते।
पादाब्जयोरतिविकासविलासबोधः
स्यादेव देवि तव कान्तनिजस्वरूपे॥५२॥

ये भक्त आपके चरण-कमल के उस पराग-वन का चुम्बन करते हैं, जो देवताओं और श्रेष्ठ मुनियों के समूह के लिए भी दुर्ल्लभ है। हे देवि! आपके सुन्दर स्वरूप में चरण-कमलों के विकास और विलास का बोध तो है ही!

यावन्न ते सरसिजद्युतिहारिपादे
न स्याद्रतिस्तरुणबाङ्कुर खण्डिताशे।

तावत्कथं तरुणिमौलिमणौ जनानां
ज्ञानं दृढं भवति भामिनि रामरूपे॥५३॥

हे देवि! हे रामस्वरूपे! सुन्दरि! जिस संसार में युवाओं के बाँकपन से मोक्ष की आशा खण्डित हो गयी है, उस संसार में जबतक कमल की शोभा को जीतनेवाले आपके चरणों में अनुराग नहीं होगा, तबतक तरुणियों की शिरोमणिस्वरूपा आपके स्वरूप का दृढ़ ज्ञान कैसे होगा?

कर्प्पूरपूरितदलोदरपाण्डुपक्वां
पूगीफलेन खदिरां सुधया विशुद्धाम्।
वीटी कदा परिविधाय सुनागवली
दास्यामि देवि वदने परमे त्वदीये॥५४॥

हे देवि! कर्पूर से भरे हुए, पीले, पके, सुपारी से युक्त, कत्था और चूना से शोधित पान का बीड़ा लगाकर आपके परम मुख में मैं कब डाल पाऊँगा?

साक्षात्तपोव्रतयमैर्नियमैस्समीहेत्
कर्त्तुं कृपामृत इह प्रशमं स्वरूपम्।
नाथस्य ते श्रुतिवचो विषयं कथं स्यान्मूढो
वृथोत्सृजति देवि मुखान्यमूनि॥५५॥

हे देवि! तप, व्रत, यम नियम आदि से आपके पति श्रीराम के वेदोक्त स्वरूप का साक्षात्कार करने के लिए आपकी कृपारूपी अमृत के रहने पर ही लोग इच्छा कर पाते हैं। पर जो मूर्ख हैं, वे व्यर्थ क्यों आपके इन मुखों का त्याग करते हैं? (उन्हें तो आपको पाने की चेष्टा करनी चाहिए।)

योगाधिरूढमुनयो हरिपादपद्मे
ध्यायन्ति ते चरणपंकजयुग्ममन्तः॥
वाञ्छन्ति विघ्नशतशोप्यऽनिवार्य्यमाणां
भक्तिं भवाब्धितरणीयकृपापयोधेः॥५६॥

योगाभ्यास में लीन मुनिगण हरि श्रीराम के चरण-कमल में आपके दोनों चरणकमलों को अन्तःस्थित मानकर ध्यान करते हैं। वे सैकड़ों विघ्नों के द्वारा भी जिसे बाधित न किया जा सके, ऐसी भक्ति चाहते हैं, जो भक्ति संसार रूपी समुद्र को पार करानेवाली आपकी कृपा रूपी समुद्र से उत्पन्न होती है।

चार्वङ्गि ते चरणचारणवन्दिसङ्गं
मह्यं विदेहतनये परिदेहि नान्यम्।
याचे वरं वरविदां वरदे भवन्त्या
येनामुना तव धवे मम रञ्जनं स्यात्॥५७॥

हे सुन्दर अंगों वाली! आपके चरणों के चारण और वन्दी जन जो हैं, उनकी संगति मुझे दें। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। दे देवि! उत्तम ज्ञान वालों को वर प्रदान करने वाली! आपसे ऐसे वर की याचना करता हूँ जिससे आपके पति श्री राम में मेरा अनुराग उत्पन्न हो।

मीनालिहारिणिसरोजविखञ्जरीटाः
खञ्जीकृतास्तरलकोणकटाक्षमोक्षैः।

किं भावयन्ति रसिका जगतीतले ये
चाञ्चल्यमेति पुनरङ्गमनो न येषाम्॥५८॥

मत्स्य, भ्रमर, हरिण शावक, कमल और खञ्जन ये सबके सब आपकी चंचल आँखों के कटाक्ष के समक्ष फीके पड़ गये (लँगड़े हो गये) क्या इस संसार में रसिक गण उन्हीं की कल्पना करते हैं जिनके अंग तो चंचल हैं किन्तु श्वास चंचल नहीं रहते।

याचेऽहमम्ब मधुसूदनमूर्तिभावं
सार्द्धन्त्वयातिदृढमञ्जलिना विशेषम्।
त्वां देव देवि वरदे मुनि संघमुख्याः
मन्यन्ति वल्लभतरां स्वपतेर्भवन्तीम्॥५९॥

हे अम्ब! मैं हाथ जोड़कर आपके साथ दृढ रूप से स्थित मधुसूदन श्रीराम की मूर्ति की अनुभूति होने की विशेष याचना करता हूँ। हे देवों की देवी! श्रेष्ठ मुनिगण आपको अपने पति श्री राम की सबसे प्रिया मानते हैं।

संकर्षण उवाच
एवं श्रुत्वा परं रूपं जानक्या जाड्यनाशनम्।
उपरराम प्रशान्तात्मा ईश्वरः स सदाशिवः॥६०॥
निरीक्ष्य त्वन्मुखम्भोजं भावयन् रूपमद्भुतम्॥
कांक्षन् तस्याः परां भक्तिं पादपंकजयोर्दृढाम्। ।६१॥

संकर्षण बोले– इस प्रकार जडता का नाश करनेवाले जानकी के स्वरूप को सुनकर तथा आपके मुखकमल को देखकर अद्भुत रूप के अनुभव करते हुए श्रीसीताजी के चरणकमलों में परम दृढ भक्ति की अभिलाषा करते हुए सदाशिव भगवान् शंकर ने विराम लिया।

उवाच तं वरारोहा जानकी भक्तवत्सला।
एवमस्तु महादेव यस्त्वयोक्तं च नान्यथा॥ ६२॥
अन्यत्तु कांक्षितं ब्रूहि दास्यामि देवदुर्लभम्।
सत्यामपि कृपोन्मुख्यां तस्यां किं च दुर्लभम्॥६३॥

इस पर भक्तवत्सला जानकी बोली कि हे महादेव! ऐसा ही हो। इसमें विचलन नहीं इसके अतिरिक्त भी यदि कुछ इच्छा हो तो कहो, मैं वह दूँगी, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। श्री सीताजी जब कृपा करने के लिए उन्मुख हों तो कुछ भी दुर्ल्लभ नही रह जाता है।

प्रसन्नवदनां दृष्ट्वा सोऽपि देवशिरोमणिः।
ययाचे वरमात्मानं रहस्यं भावबोधकम्॥६४॥

देवों के शिरोमणि महादेव ने भी श्रीसीता को प्रसन्न देखकर श्रीसीता के स्वरूप का बोध करानेवाले रहस्य के ज्ञान की याचना की।

प्रादात्तस्मै वदान्या सा यद्यन्मनसि कांक्षितम्॥
वरं वरेश्वरी साक्षात्पुनरुवाच सा हितम्॥६५॥

दानशीला श्रीसीता ने भी प्रत्यक्ष होकर महादेव के मन में जो-जो इच्छा थी, उसका वर दिया और पुनः कल्याणमयी वाणी बोली।

अयं पवित्रमौलिर्मे स्तवराजस्त्वया शिव।
प्रकाशितोऽतिगोप्योऽपि मत्प्रसादात् सुरोत्तम॥६६॥

हे शिव! सुरोत्तम! यह मेरा स्तवराज जो पवित्रों स्तवों में प्रधान है, मेरी कृपा से आपके द्वारा इसका संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार किया जाये।

यः पठेदिममग्रे मे पूजाकाले प्रयत्नतः।
तस्येहामुत्र किञ्चिन्न वस्तु स्याद् दृगगोचरम्॥६७॥

जो इस स्तवराज को पूजा के समय मेरे आगे यत्नपूर्वक पढ़ता है उसके लिए इस संसार में और परलोक में कोई वस्तु अलभ्य नहीं रहेगा।

धनं धान्यं यशः पुत्रानैश्वर्य्यमतिमानुषम्।
प्राप्येऽह मोदते भूयो नाशेमत्पदतां व्रजेत्॥६८॥

धन, धान्य, यश, पुत्र-पौत्र, ऐश्वर्य, श्रेष्ठ मानवता पाकर वह पुनः पुनः प्रसन्नता प्राप्त करता है और मृत्यु के उपरान्त मेरा धाम पाता है।

यद्यल्लोकान्तरं वस्तु त्रिषु लोकेषु दृश्यते।
सर्वं तदस्यपाठेन प्राप्नुयाद् भुवि मानवः॥६९॥

जो जो वस्तुएँ तीनों लोकों में दिखाई पड़ते हैं, वे सब मनुष्य इस संसार में इस स्त्रोत्र के पाठ से प्राप्त कर लेते हैं।

इदं मे परमैकान्तं रहस्यं सुरसत्तम।
न प्रकाश्यं त्वया शम्भो पाठाय भावद्वेषिणे॥७०॥

हे सुरसत्तम! यह मेरा परम नित्य रहस्यमय स्वरूप है।जो भक्तिभाव से द्वेष करते हों, उनके समक्ष पाठ के लिए इसे प्रकाशित न करें।

भक्तिर्यस्यास्ति देवेशे सदैश्वर्ये तथा मयि।
गुरौ सर्वात्मभावेन विद्यते भक्तिरुत्तमा॥७१॥
तस्मै देयं सते शम्भो भावानार्हहृतहरौ।
सर्वभूतहितेच्छाय शान्ताय सौम्यमूर्तये॥७२॥

हे महादेव! सदा ऐश्वर्यवान् देवेश श्रीराम तथा मेरे प्रति जिनकी भक्ति हो, हर तरह से गुरु के प्रति उत्तम भक्ति हो ऐसे सज्जन, शान्त, सौम्य मूर्ति तथा सभी प्राणियों के कल्याण की इच्छा रखने वालों को यह स्तोत्र देना चाहिए।

इत्युक्त्वा भावनामूर्तिः सीता जनकनन्दिनी।
कृपापात्राय तस्मै संप्रादाद्वरान्तरं पुनः॥७३॥

यह कहकर भावमयी श्रीसीता जनकनन्दिनी ने कृपा के अधिकारी भगवान् शंकर को अन्य वर भी प्रदान किया।

इति जानकीस्तवराजः समाप्तः

***

मण्डन मिश्र का निवास

डॉ० शशिनाथ झा

वेदान्त, न्याय-दर्शन, मीमांसा एवं समग्र हिन्दू संस्कृति के धुरीण विद्वान्, महान् पण्डित मण्डन मिश्र का काल एवं जन्म-स्थल बडा ही विवादास्पद रहा है। विभिन्न विद्वानों ने उनकी लिखित पुस्तकों, यत्र-तत्र अन्य तत्त्वविदों के मन्तव्य एवं समकालिक रचनाकारों की पंक्तियों को आधार मानकर काल एवं स्थल सम्बन्धी विवादों का निराकरण करने का श्लाघ्य कार्य किया है। डा. शशिनाथ झा का प्रस्तुत आलेख उन्हीं विमर्श-बिन्दुओं के स्पष्टीकरण की दिशा में उत्कृष्ट रेखांकन है।

आचार्य मण्डन मिश्र (750-830 ई०) मीमांसा एवं वेदान्त दर्शन के महान् विद्वान् थे। इन्होंने मीमांसादर्शन में 'मीमांसानुक्रमणी', 'विधि-विवेक', 'भावनाविवेक' एवं 'विभ्रमविवेक' की रचना की। अद्वैत वेदान्त में उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ब्रह्मसिद्धि' है और व्याकरण दर्शन पर 'स्फोटसिद्धि'। इन ग्रन्थों का प्रभाव सम्पूर्ण भारतवर्ष में उनके समय से ही रहा है। 'विधि-विवेक' पर वाचस्पति मिश्र ने (दशमीं शती) 'न्यायकणिका' की रचना की और इसमें उन्होंने मण्डन को आचार्य कहा है:-

आचार्यकृतिनिवेशनमप्यवधूतं वचोऽस्मदादीनाम्।
रथ्योदकमिव गङ्गाप्रवाहपातः पवित्रयति॥

बाद में इन्होंने इसी पंक्ति को शांकरभाष्य की भामती में भी शंकराचार्य के लिए रख दिया। अपने शास्त्र में मौलिक सिद्धान्त स्थापित करनेवाले को 'आचार्य' कहा जाता है।

मण्डन मिश्र की ब्रह्मसिद्धि पर वाचस्पति मिश्र ने 'ब्रह्मतत्त्वसमीक्षाव्याख्या' लिखी थी, जो आज उपलब्ध नहीं है, किन्तु मैथिल विद्वान् शंखपाणि (बारहीं शती) की व्याख्या प्रकाशित है। 'स्फोटसिद्धि' पर दक्षिण भारतीय परमेश्वर ने गोपालिकाटीका (पन्द्रहवीं शती) लिखी।

मीमांसक के रूप में भी मण्डन मिश्र ने वेदान्त का महत्त्व दिया है। 'विधि विवेक' में वे कहते हैं कि विधिक्रिया निरपेक्ष वेदान्त-वाक्य से ब्रह्म की सिद्धि होती है और प्रभाकरमीमांसा सम्प्रदाय में विधि युक्त वेदान्तवाक्य का भी प्रामाण्य है। ज्ञातव्य है कि कुमारिल भट्ट से प्राचीन कुछ मीमांसकों का मत था कि वेदान्त प्रमाण नहीं है जिसका खण्डन 'ब्रह्मसिद्धि' के चतुर्थकाण्ड में मण्डन मिश्र ने किया है।

शंकराचार्य (778-820 ई०) ने ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य में जिस अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है वह वैरागी संन्यासियों का है जिसे बाद में विवरण प्रस्थान के नाम से जाना जाने लगा, जबकि मण्डन मिश्र का अद्वैत सिद्धान्त गृहस्थों एवं संन्यासियों के लिये भी जिसे वाचस्पति मिश्र ने भामती में विशद रूप से समझाया है इसलिये इस सिद्धान्त को भामती प्रस्थान कहते हैं और

इसीलिये इनके विषय में कहा गया- **'वाचस्पतिर्मण्डनपृष्ठसेवी'।**

मण्डन मिश्र का निवास माहिष्मती ग्राम (वर्तमान महिषी, जिला-सहरसा, बिहार) में था। वह गाँव अनादिकाल से आज तक विद्या एवं साधना का सिद्धपीठ रहा है। यहाँ मण्डन मिश्र एवं उनके अनुयायियों की परम्परा आज भी वर्तमान है। वहाँ उग्रतारा भगवती विराजमान हैं जिन्हें वसिष्ठाराधिता कहा जाता है। नीलतन्त्र में लिखा है:-

माहिष्मत्याश्च माहात्म्यं शृणु देवि वरानने।
वसिष्ठेन समानीता तारिणी चीनदेशतः॥
तारिण्यैक जटाशक्तिस्तथा नीलसरस्वती।
अक्षोभ्यगुरुणा युक्ता राजते तत्र सुन्दरी॥

अभी वहाँ विद्यमान तारा की मूर्त्ति ठीक इसी प्रकार की है। मूर्त्ति की प्राचीनता एवं स्थान का भौगोलिक स्वरूप की भी प्राचीनता स्पष्ट है। अभी मूर्त्ति इस स्थान की सामान्य सतह से पन्द्रह फीट नीचे में विद्यमान् है। अथर्ववेद में वसिष्ठाराधिता सरस्वती की चर्चा आयी है-

अयमु ते सरस्वति! वसिष्ठो
द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः।
वर्ध शुभे स्तुवते रासि वाजां
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ 6, 1, 6

तन्त्रग्रन्थ 'रुद्रयामल' के सत्रहवें पटल में एवं 'ब्रह्मयामल' के प्रथम-द्वितीय पटल में माहिष्मतीस्थित उग्रतारा की स्थिति एवं महत्त्व का वर्णन आया है।

मण्डन मिश्र मिथिलास्थित माहिष्मती के मैथिल विद्वान् थे, इसमें निम्नांकित प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

(1) वाचस्पति मिश्र ने अपने ग्रन्थों में अनेक जगह पाटलिपुत्र के साथ माहिष्मती का उल्लेख किया है जिससे मिथिला की माहिष्मती ही गृहीत हो सकती है, दक्षिण भारत की नहीं- **''अस्ति च पाटलिपुत्रे पूर्वदृष्टस्य देवदत्तस्य परं माहिष्मत्यामवभासः समीचीनः''**

- भामती-1.1.1

(2) 'महाचीनकर्म' नामक तन्त्रग्रन्थ के बाइसवें पटल में स्पष्ट लिखा है कि धर्ममूला (धेमुड़ा) नदी के तट पर बसी माहिष्मती में मण्डन मिश्र का निवास एवं तारा स्थान है:-

यस्याः पुरो राजति धर्ममूला
या क्षालयन्ती चरणौ सदास्याः।
माहिष्मती मण्डनमण्डिता सा
यत्रास्ति तारा भुवनस्य सारा॥

(3) वर्तमान में धमुड़ा नदी, उग्रतारास्थान एवं मण्डन मिश्र का डीह (वासस्थान) महिषी गाँव (सहरसा) में विद्यमान है। इस डीह का उल्लेख 1880 ई० के सर्वे नक्शा में है। मिथिला के जिन मनीषियों ने अपने आवास परिसर को अध्ययन केन्द्र बना कर शिष्यों को समर्पित कर दिया उनके वे परिसर सामान्य जनता के लिये समर्पित हो गये और जब तक उनके अनुयायीगण विद्याकेन्द्र चलाते रहे तब तक तो चला, बाद में अध्यापन के अवरुद्ध होने पर भी श्रद्धा का स्थान बनकर आम आदमी का ही बना रहा। जैसे- उच्चैठ में कालिदास डीह, सरिसव में आयाची मिश्र का डीह, महिषी में मण्डन मिश्र का डीह, करियन में उदयन का डीह, तरौनी में विष्णुपुरी डीह, ठाढ़ी में वाचस्पति डीह आदि। इन स्थानों पर अभी भी किसी का वैयक्तिक अधिकार नहीं है और उन्हीं महापुरुषों के नाम से सरकारी कागजात बहुत प्राचीन काल से बनते रहे हैं। श्रद्धा के कारण यहाँ प्राचीन परिपाटी है कि इन स्थानों की मिट्टी के गोले से बच्चों का अक्षरारम्भ कराया जाता है।

(4) 'तैत्तिरीयार्थदीपिका' नामक वेदभाष्य नवम शतक के अन्तिम चरण में होनेवाले दाक्षिणात्य विद्वान् हरिस्वामी ने मण्डन मिश्र को तैरभुक्त (तिरहुत का निवासी) कहा है:-

''यथा विध्युद्देश इति प्रभाकर-मण्डनाद्यास्तैरभुक्ताः।

- (एकाग्निकाण्ड-पृ. 184)

ज्ञातव्य है कि हरिस्वामी नाम के दो विद्वान् प्रसिद्ध हुए- (1) विक्रम में समकालिक गुहस्वामी के पुत्र हरिस्वामी, जिन्होंने यजुर्वेद, शतपथब्राह्मण और आश्वलायन-श्रौतसूत्र पर भाष्य लिखा और (2) जयस्वामी के पुत्र नवम-दशम शतक के विद्वान् जिन्होंने- (1) तैत्तिरीयार्थदीपिका एवं (2) एकाग्निकाण्डव्याख्या की रचना की। इस प्रमाण को प्रथमतः 2011 में कोलकाता से प्रकाशित 'विभूतिवन्दना' में डॉ. उदयनाथ झा 'अशोक' ने प्रस्तुत किया।

हरिस्वामी के भाष्यसहित सम्पूर्ण एकाग्निकाण्ड 1932 ई. में म.म. कुप्पुस्वामीशास्त्री के सम्पादकत्व में तेलगू लिपि में कुम्भकोणम् से छपा था, इसका उल्लेख डॉ. के. टी. एस. पोट्टी ने अपने शोध प्रबन्ध ''Nomenelature in the Matalanguage of Mendanmishra'' में किया गया है (द्रष्टव्य- 'प्रज्ञाभारती' (करुणकरन् फेलिसिटेसन भाल्यूम)- तिरुवनन्तपुरम्, 2005 ई०, पृ. 408-09.

(5) न्यायरत्नदीपावली में आनन्दानुभवाचार्य ने (पन्द्रहवीं शताब्दी) मैथिल विद्वानों के मध्य में मण्डन मिश्र का नाम लिया है- **''किञ्च सिद्धप्रभावैः विश्वरूप-प्रभाकर-मण्डन-वाचस्पति-सुचरितमिश्रैः शिष्टाग्रणीभिः....''।**

(6) माधवाचार्य ने 'शंकरदिग्विजय' नामक ग्रन्थ में मण्डन मिश्र के माहिष्मती गाँव का उल्लेख किया है जहाँ की पानी भरनेवाली और तोते भी संस्कृत बोलते थे। यद्यपि इस ग्रन्थ में कुछ ऐतिहासिक विसंगति देखी जाती है, फिर भी सुनी हुई बातों के आधार पर लिखे जाने के कारण उन विसंगतियों को छोड़कर अन्य विषय ग्राह्य ही हैं। माधवाचार्य उत्तर भारत की भौगोलिक या अन्य विषय में कुछ अन्यथा लिख गये तो उसे सुधार कर विवेचन करना चाहिए। अनके ही पद्य मिथिला में अपने उत्कर्षसूचक के रूप में प्रचलित हैं-

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं,
शुकाङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थ-नीडान्तर-संनिविष्टा
अवेहि तन्मण्डनमिश्रधाम॥

'शंकरदिग्विजय' में मण्डन के सिद्धान्त के रूप में 'वेदान्ताः न प्रमाणम्' जो लिखा गया है, वह भी दन्तकथा के आधार पर ही, क्योंकि पुरातन मीमांसकों का यह सिद्धान्त है जिसका खण्डन मण्डनमिश्र ने ब्रह्मसिद्धि के चतुर्थखण्ड में किया है।

(7) 1800 ई. से पूर्व के मैथिल विद्वान् चन्द्रदत्त ने अपने ग्रन्थ 'भक्तमाला' जिसका दूसरा नाम 'भगद्भक्तिमाहात्म्यम्' है, उसमें मण्डन मिश्र का चरित लिखा है। इसमें उन्हें मिथिला निवासी कहा गया है-

विचिन्त्य मिथिलायां स प्रजापतिरवातरत्।
श्रीमन्मण्डनमिश्र इति नाम्ना द्विजकुले विधिः॥

(सर्ग 28, श्लोक 24)

श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई से 1905 ई. में भक्तमाला (151 सर्गात्मक) का प्रथम प्रकाशन हुआ था। पुनः श्रीमद्भगवद्भक्तिमाहात्म्य नाम से उस ग्रन्थ का प्रकाशन प्रो. बाबूराम शर्मा के सम्पादकत्व में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली से 2012 ई. में हुआ है।

(8) मण्डन मिश्र की 'स्फोटसिद्धि' में जो बातें छोड़ दी गयीं थीं उनका विवेचन करने के लिए एवं विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिए भरत मिश्र ने स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना 'स्फोटासिद्धि' नाम से ही कर दी। इन दोनों स्फोटसिद्धियों के आधार पर उनके समकालिक किसी विद्वान् ने, जिसका नाम ज्ञात नहीं, 'स्फोटसिद्धिन्यायविचार' ग्रन्थ की रचना की जिसका प्रकाशन निर्णयसागर, मुम्बई से 1927 ई. में पं. गोमती प्रसाद के सम्पादकत्व में हुआ था। इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार अपने को लक्ष्मण नदी के तटवर्ती गाँव का निवासी कहता है और मण्डन एवं भरत को प्रणाम करता है। लक्ष्मणा नदी मध्य मिथिला में वह रही है- ''मध्य बहथि लक्ष्मणा प्रभृति से मिथिला विद्यागारा''-कवीश्वर चन्दा झा। इससे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का लेखक मैथिल था और मण्डन-भरत की परम्परा में अध्ययन कर चुका था। इससे स्पष्ट है कि मण्डन मिश्र मिथिला के निवासी थे।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों से मण्डन मिश्र का मैथिलत्व सिद्ध होता है। उनके ग्रन्थों के आन्तरिक अध्ययन के आधार पर पं. सहदेव झा ने 'वाचस्पति मिश्र' नामक अपने मैथिली भाषात्मक ग्रन्थ में उन्हें मैथिल सिद्ध किया है। यह ग्रन्थ मैथिली अकादमी, शास्त्रीनगर, पटना से प्रकाशित है।

प्राचार्य, व्याकरण विभाग,

कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय,

दरभंगा

❖

'चित्रमय रामकथा समग्र' पुस्तक का लोकार्पण

दिनांक ०७.०१.२०१४ को महावीर मन्दिर परिसर में श्रीमती सोनी झा द्वारा आलेखित 'चित्रमय रामकथा समग्र' पेंटिग रामायण पुस्तक का लोकार्पण आचार्य किशोर कुणाल ने किया। इस अवसर पर धर्मनिष्ठ गणमान्य व्यक्तियों, बुद्धिजीवियों एवं शिक्षाविदों ने उपस्थित होकर लोकार्पण कार्यक्रम में भाग लेकर इस रामायण पुस्तक एवं लेखिका सोनी झा के अप्रतिम प्रयास की सराहना की। रामायण पुस्तक का लोकार्पण करते विद्वान् समाजसेवी आचार्य किशोर कुणाल ने कहा कि ''मिथिला क्षेत्र की कला संस्कृति में एक अपूर्व विन्यास एवं छटा है। यहाँ का मैथिल समाज तेजस्वी प्रतिमा से परिपूर्ण है, सिर्फ इसे उभारने एवं स्थापित करने की जरूरत है। इस चित्रमय रामकथा समग्र रामायण में लेखिका सोनी का तुलिका चित्र से विलक्षण मिथिला पेंटिंग में एक-एक चित्र तैयार की है। फोटो परिचय मैथिली, अंग्रेजी, हिन्दी भाषा में इनके पति वरिष्ठ पत्रकार लम्बोदर झा ने लिखा है।'' आचार्य किशोर कुणाल ने इस दम्पती को इस विशिष्ट कार्य के लिए शुभकामना दी।

इस रामायण-चित्रमय रामकथा समग्र में २६४ मिथिला पेंटिंग चित्र के माध्यम से पूरे रामकाव्य का वर्णन है। एस. आर. ग्राफिक्स से मुद्रित तथा लक्ष्मी प्रेस वाराणसी से ही प्रकाशित इस पुस्तक में कुल ४८१ पृष्ठ है, पुरी के जगद्गुरु शंकराचार्य निश्चलानन्द सरस्वती महाराज ने अपने आशीर्वचन से इसे गरिमा प्रदान की है। डा. किशोर झा. पं. कैलाश नाथ झा, सहित विद्वानों ने पुस्तक में अपनी मन्तव्य लिखा है, जबकि आचार्य प्रवर स्व. पं. आद्याचरण झा ने इसका नामकरण किया।

परिक्रमा/प्रदक्षिणा

सुरेशचन्द्र मिश्र

किसी भी धर्म के क्रिया-कलाप के पीछे कुछ वैज्ञानिक समझ एवं उसके अनुपालन हेतु कुछ आदेश-अनुदेश निर्दिष्ट रहते हैं। परिक्रमा एवं यात्रा हिन्दू-धर्म के इसी दृष्टिकोण को आगे बढाती है। हिन्दूधर्म में तीर्थ-क्षेत्रों, देवों, मन्दिरों एवं पूज्य-पुरुषों की परिक्रमा किस प्रकार की जाती है उसके आचार-विचार क्या हैं; उसके आरम्भ और परिसमाप्ति के क्या सौष्ठव हैं; किस देवता की परिक्रमा कितनी बार की जाये; आदि बिन्दुओं पर शास्त्रीय प्रकाश डाल रहे हैं- श्री सुरेश चन्द्र मिश्र।

हम आर्य संतान हैं। भारत हम आर्यों की पवित्र भूमि है। यहाँ जन्म ग्रहण करना न केवल हम मानवों के लिए अपितु देवताओं तक के लिए भी अतिशय गौरव की बात रही है। इसीलिए यहाँ के सम्बन्ध में देवताओं की भी स्पष्ट उद्घोषणा है-

गायन्ति देवा किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।(2. 3. 25)

भारतवासियों के भाग्य की सराहना में देव-गण गाते रहते हैं कि भारत-भूमि में जन्म लेनेवाले वे भरतवंशी देवताओं से भी अधिक धन्य हैं; क्योंकि भारतवर्ष स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) का मार्ग है।

भारत 'देव-भूमि' की अलौकिक संज्ञा से अभिहित है। इसकी इतनी प्रथित प्रशंसा के अनेक कारण हैं। हम भरत वंशी ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।'' तथा ''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'' की भावना के प्रबल पक्षधर रहे हैं। यहाँ के कण-कण से हमें स्नेह है अतः कण-कण हमें नमस्य है। अगर कोई इतर देशवासी मुझसे पूछ कि भई, अपना-अपना देश तो सबको प्यारा है, फिर यहाँ की ऐसी कौन-सी विशेषता है? तो मैं स्पष्ट कहूँगा, ''हमारी जीवन शैली, व्यवहार-विचार, आचार-निष्ठा कुछ ऐसी है जिससे यह देश सबसे पृथक् है और यही हमारे प्रबल आकर्षण का कारण है। जहाँ मैं, मैं नहीं'- एक संस्कृति हूँ, एक देश नहीं, विशाल विश्व हूँ।'' मेरे इन्हीं सदाचारों का ही एक अंश प्रदक्षिणा/ परिक्रमा है। हम समस्त भारतवासी बहुविध देवपूजक, मूर्तिपूजक रहे हैं। यहाँ एक ओर जहाँ स्थापित मान्यताओं से युक्त मन्दिरों, देवियों की पूजा होती रही है, वहीं दूसरी ओर महनीयता प्राप्त भूमि, पर्वतों, शिलाखंडों, जंगलों, नदियों, जलाशयों, माता-पिता, गुरु, आचार्यों, उपाध्यायों, सर्पों, पशु-पक्षियों तक को भी हमने अपनी पूजा का विषय बनाया है।

पूजा के विविध प्रकारों में प्रदक्षिणा/परिक्रमा एक सरल अथच सर्वतोभद्र, सर्वभावन आत्म निवेदन की कुशल अभिव्यक्ति है। परिक्रमा 'परि' उपसर्गक 'क्रमु पाद विक्षेपे' धातु से 'टाप्' प्रत्यय लगकर निष्पन्न है, जिसका निर्वचन है परितः क्रम्यते जनैः इति परिक्रमा। इसी प्रकार 'प्रदक्षिणा'

'परि उपसर्गपूर्वक' 'दक्ष्' धातु से 'इनम्' एवं टाप्' प्रत्यय लगकर निष्पन्न है। प्रगतो दक्षिणा। परिक्रमा षोडशोपचार का 15वाँ उपचार भी है। षोडशोपचार ये हैं:-

आवाहनासनाभ्यां च पाद्यार्घ्याचमनैस्तथा।
स्नान-वस्त्रोपवीतैश्च गन्ध-पुष्प-सुधूपकैः॥३॥
दीप-नैवेद्य-ताम्बूल-प्रदक्षिण-विसर्जनैः ।
षोडशार्चाप्रकारैस्तमेतैरर्चयेत्सदा सुधीः॥४॥

(अर्चावतार-निरूपणम् : श्लोक सं. 4)

(आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, यज्ञोपवीत, चन्दन, धूप, पुष्प, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा, विसर्जन)

प्रदक्षिणा/परिक्रमा का आरम्भ कबसे हुआ यह सर्वथा विचारणीय तथ्य है। हाँ, निस्संदेह इतनी बात अवश्य कही जा सकती है कि समाज में जबसे यज्ञादि कार्य विधिवत् सम्पन्न होने लगे, लोक-जीवन में जबसे कर्मकाण्ड, देवपूजन पूरी समर्थता से समर्च्य हुए प्रदक्षिणा/परिक्रमा रूप मनोभावन क्रिया तबसे ही मानव हृदय में बलवती हो अतिशयता के साथ चल पड़ी। वैदिक सूत्र-काल जिसे इ.पू. 500-1000 वर्ष माना जाता है, विवाह प्रकरण में परिक्रमा/प्रदक्षिणा, का विधान है, जो वर्तमान समय में 'सात-फेरे' के रूप में प्रसिद्ध है। यों महाकवि कालिदास के ग्रंथों में इसकी (परिक्रमा/प्रदक्षिणा) अनेकत्र चर्चा है। देखिए-

प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां
सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता।
प्रणम्य चानर्च विशालमस्याः
शृङ्गान्तरं द्वारमिवार्थ सिद्धेः॥

(रघुवंश, 2/21)

अक्षत (चावल) को हाथ में लेकर सुदक्षिणा ने पयस्विनी नन्दिनी की प्रदक्षिणा/ परिक्रमा वन्दना की और फिर उसके विशाल ललाट की पूजा इस प्रकार की मानो मनोरथ की सिद्धि के प्रवेश द्वार हों।

पुनश्च-

प्रदक्षिणी कृत्य हुतं हुताशन-
मनन्तरं भर्तुररुन्धतीञ्च।
धेनुं सवत्सां च नृपः प्रतस्थे
स मङ्गलोदग्रतरप्रभावः॥

(रघुवंश, 2/71)

सपत्नीक राजा दिलीप हवन से तर्पित अग्नि, वसिष्ठ मुनि, गुरुपत्नी अरुंधती और बछड़े के सहित नन्दिनी गौ की परिक्रमा कर अच्छे मङ्गलाचारों से प्रबर्धित प्रताप वाला होते हुए अपनी राजधानी अयोध्या को प्रस्थित हुए।

इससे इतनी बात तो स्पष्ट सिद्ध ही होती है कि महाकवि कालिदास के समय भी प्रदक्षिणा/परिक्रमा रूप पूजन की षोडशोपचार पद्धति संप्रतिष्ठित थी; तभी तो सुदक्षिणा (दिलीप पत्नी) पूजार्थ थाली सजा हाथ में अक्षत (चावल) ले नन्दिनी (वसिष्ठ गौ) के ललाट की पूजा करती है। आज भी स्त्रियाँ जब गो पूजन करती हैं तब गौ के सींगों में सिन्दुर लगाती है, अक्षत छींटती हैं, अपने हाथों से उसे खाना खिलाती हैं एवं प्रदक्षिणा करती हैं।

खैर, जो भी हो, पुराणादिकों में तो अनेकत्र इसकी (प्रदक्षिणा/परिक्रमा) चर्चा मिलती ही है। देखिए-

प्रदक्षिणीकृतो येन मथुरायान्तु केशवः।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥

(वाराह पुराण- 158: 8)

प्रदक्षिणा का महत्त्व बतलाते हुए वाराह पुराण कहता है-

जिसने मथुरा क्षेत्र में केशव (श्री हरि) की प्रदक्षिणा/परिक्रमा की मानो उसने सप्तद्वीपों वाली वसुन्धरा की ही सम्पूर्ण सम्यक् परिक्रमा कर ली

कृत्वा प्रदक्षिणं देवि विश्रामं कुरुते तु यः।
नारायणसमीपे तु सोऽनन्तफलमश्नुते॥३३॥
सुप्तोत्थितं हरिं दृष्ट्वा मथुरायां वसुन्धरे।
न तस्य पुनरावृत्तिर्जायते स चतुर्भुजः॥३४॥
कुमुदस्य तु मासस्य नवम्यां तु वसुन्धरे।
प्रदक्षिणीकृत्य भुवं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३५॥
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च गोघ्नो भग्नव्रतस्तथा॥
मथुरां तु परिक्रम्य पूतो भवति मानवः॥३६॥
अष्टम्यां प्राप्य मथुरां दन्तधावनपूर्वकम्॥
ब्रह्मचर्येण तां रात्रिं कृतसंकल्पमानसः॥३७॥
धौतवस्त्रस्तु सुस्नातो मौनव्रतपरायणः॥
प्रदक्षिणं तु कुर्वीत सर्वपातकनाशनम्॥३८॥
प्रदक्षिणां प्रकुर्वाणमन्यो यः स्पृशते नरः॥
सर्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥३९॥
मथुरायां नरो गत्वा दृष्ट्वा देवं स्वयम्भुवम्॥
प्रदक्षिणायां यत्पुण्यं तत्पुण्यं लभते नरः॥४०।

(वाराह पुराण-158:33-40)

जो व्यक्ति प्रदक्षिणा करके भगवन्नारायण के समीप बैठकर थोड़ा विश्राम कर लेता है, वह अनन्त पुण्यफलों का भागी होता है। जो व्यक्ति सुप्तोत्थित श्री हरि का मथुरा में दर्शन करता है, उस व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता है यानी मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। आश्विन शुक्ल पक्ष की (कुमुदस्य मासस्य) नवमीं तिथि को (मथुरा की पवित्र भूमि की) प्रदक्षिणा करता हुआ व्यक्ति सभी पापों से सद्यः विमुक्त हो जाता है। इतना ही नहीं ब्रह्मघ्न (ब्रह्मघाती, ब्राह्मण को मारने वाला) सुरापायी, गौ का वध करने वाला (गौ को मारने वाला), व्रतानुष्ठान हित संकल्पित हो बीच में ही व्रत छोड़ देने वाला भग्नव्रत व्यक्ति भी मथुरा में परिक्रमा/प्रदक्षिणा कर पवित्र हो जाता है।

पवित्र भूमि मथुरा में परिक्रमा/प्रदक्षिणा की विस्तृत विधियाँ बतलाते हुए वाराह पुराणकार और स्पष्ट ढ़ंग से कहते हैं-

मथुरा आकर अष्टमी तिथि की रात्रि में ब्रह्मचर्य्य धारण पूर्वक मन में परिक्रमा/प्रदक्षिणा करने का शुभ संकल्प लेना चाहिए। प्रातः (नवमीं तिथि को) शौचादि से निवृत हो दंतधावनोपरान्त स्नानकर, धौत वस्त्र (धोती) धारणकर मौन हो परिक्रमा/प्रदक्षिणा करनी चाहिए। परिक्रमा/प्रदक्षिणा सभी पापों को नाश करने वाली है। यही नहीं, अपितु परिक्रमा/प्रदक्षिणा करता हुआ व्यक्ति यदि किसी अन्य व्यक्ति का स्पर्श करता है तो उसकी भी सारी मनोभिलाषाएँ स्वतः पूरी हो जाती हैं, इसमें कुछ सोचने की बात नहीं है।

पुनः और आगे वाराहपुराणकार तीर्थभूमि का महत्त्व बतलाते हुए बढ़े रोचक ढंग से अपनी बात रखते हैं और प्रश्नोत्तर शैली में अपने विचार को विस्तार देते हैं। देखिए-

न दानैर्न तपोभिश्च न यज्ञैस्तादृशं फलम्।
भूमेः प्रदक्षिणायाश्च यादृशं तीर्थसेवया॥२॥
भुवश्च चतुरन्तायास्तीर्थप्रक्रमणं हरे।
सर्वतीर्थाभिगमनमस्ति दुर्गतरं नृणाम्॥३॥
अस्ति कश्चिदुपायोऽत्र येन सम्यगवाप्यते।
प्रसादसुमुखो भूत्वा तत्सर्वे कथयस्व मे॥४॥

(वाराह पुराण- 159 : 2-4)

जैसा फल दान, तप और यज्ञ से प्राप्त होता है वैसा ही फल परिक्रमा/प्रदक्षिणा भूमि के सेवन से प्राप्त होता है। भक्त श्री हरि से प्रश्न करता है कि हे हरे! मनुष्यों के लिए चतुरन्त भूमि के दूर-दूर व्याप्त तीर्थों तक जा सकना ही जहाँ कठिन है, फिर वहाँ जाकर परिक्रमा करना तो और ही अत्यन्त दुष्कर है। कृपया आप प्रसन्न

होकर सुगमतापूर्वक प्राप्त होने वाला सरल यदि कोई उपाय हो तो बताएँ। वाराहपुराणकार पुनः अपनी बात दोहराते हुए कहते हैं-

मथुरां समनुप्राप्य यस्तु कुर्यात्प्रदक्षिणम्।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥१४॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वकामानभीप्सुभिः।
कर्त्तव्या मथुरां प्राप्य नरैः सम्यक्प्रदक्षिणा॥१५॥

.....

सर्वदेवेषु यत्पुण्यं सर्वेतीर्थेषु यत्फलम्।
सर्वदानेषु यत्प्रोक्तामिष्टापूर्त्तेषु चैव हि॥१९॥
यत्फलं लभ्यते विप्रास्तस्माच्छतगुणोत्तरम्।
प्रक्रमान्मथुरायास्तु सत्यमेतद्ददामि वः॥२०॥

(वाराहपुराण-159:14-15, 19-20)

सप्तद्वीपा वसुंधरा की परिक्रमा/प्रदक्षिणा का जो फल है वही फल मथुरा की परिक्रमा का है। मथुरा की परिक्रमा सभी तरह की कामनाओं की पूर्ति करनेवाला है। सभी देवताओं, सभी तीर्थों, सभी तरह के दानों और यज्ञादिक पुण्य कर्मों के अनुष्ठान (इष्टापूर्ति) से जो पुण्य, जो फल ब्राह्मण प्राप्त करते हैं उससे हजार गुणा फल (शतगुणोत्तर फलं) मात्र मथुरा की परिक्रमा/प्रदक्षिणा करने से श्रद्धालु भक्त प्राप्त करते हैं। नारद पुराण में परिक्रमा/प्रदक्षिणा का महत्त्व निम्न प्रकार है-

प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत त्रीन् वारान् सुसमाहितः।
दृष्ट्वा नश्यति यत्पापं सप्तजन्मसमुद्भवम्।
पुण्यं प्राप्नोति विपुलं गतिमिष्टां च मोहिनि।

(नारद पुराण- उ.ख. 56:26-27)

नारद पुराण के अनुसार सुसमाहित चित्त से तीन वार परिक्रमा/प्रदक्षिणा करने पर व्यक्ति अपने सात जन्मों के पापों से मुक्त हो अभिलषित गति (गतिमिष्टां) और विपुल पुण्य को प्राप्त करता है।

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा शनैर्देवान्तिकं व्रजेत्॥

(पद्म पुराण-स्वर्ग खण्ड-19:29)

परिक्रमा/प्रदक्षिणा कर देवताओं के समीप जाना चाहिए।

प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।
व्यासस्तस्य भवेत् प्रीतो वांछितं लभते फलम्।।

(पद्मपुराण : स्वर्ग खण्ड : 18:40)

जो तीर्थों में जाकर प्रदक्षिणा करता है, उसपर व्यास प्रसन्न होते हैं और बांछित फल देते हैं।

किस देवता की परिक्रमा कितनी बार करनी चाहिए, इसका स्पष्ट संकेत पद्म पुराण में इस प्रकार है-

एका देव्याः रवेः सप्त सप्ताग्नेर्गणपतेस्त्रयः।
चतस्रो वासुदेवस्य शिवस्यार्धप्रदक्षिणा॥
चतस्रः स्युः पितृणां वै तिस्रोऽप्येका यदृच्छया॥

पद्म-पुराण

देवी की प्रदक्षिणा एक बार, सूर्य की प्रदक्षिणा सात बार, गणेश की प्रदक्षिणा तीन बार, वासुदेव (श्रीकृष्ण) की प्रदक्षिणा चार बार, शिव की प्रदक्षिणा आधी बार। आधी बार से तात्पर्य है, शिव पर जलार्पण करने के पश्चात् जल निकलने के लिए अर्घा का जो भाग पड़ता है, उसका लंघन नहीं होना चाहिए। चार बार पितरगण की अथवा किन्हीं के अनुसार तीन बार या जितनी बार इच्छा हो, की जा सकती है।

अवध परिक्रमा-

अनेक परिक्रमाओं की चर्चा ऊपर मैंने की है। अब अवध-यात्रा (अवध परिक्रमा) जिसका भारतीय संस्कृति में बड़ा ही महत्व है, का यथाशक्य वर्णन नीचे किया जा रहा है-

इस परिक्रमा के सम्बन्ध में प्रथम मैं सूचित कर दूँ कि सन् 1869 ई० में मुंशी नवल

किशोर छापाखाना (लखनऊ) से प्रकाशित 'अवध यात्रा' नामक एक पुस्तक प्राप्त हुई है, जिसमें रुद्र यामल, पद्म पुराण से संकलित कुछ श्लोक हैं। इन श्लोकों के अनुवादकर्त्ता अवधवासी श्री मुंशी राय गुर शरण लाल तथा वकील अदालत जी हैं। इसी पुस्तक के आधार पर अवध परिक्रमा का सविस्तर वर्णन अधोऽङ्कित है- इस पुस्तक की रचना सम्वत् 1926 यानी आज से करीब 144 वर्ष पहले हो चुकी थी। अवध वासी कन्हैया लाल, गुर शरण लाल जैसे श्रेष्ठ विद्वानों ने अयोध्या माहात्म्य, रुद्र यामल, स्कन्द पुराण, पद्म पुराण आदि मान्य ग्रन्थों से परिक्रमा सम्बन्धी श्लोक चुन-चुन कर संकलित किए।

इसके अनुसार स्वयं ब्रह्म-ऋषियों, राज-ऋषियों ने यह परिक्रमा की है। 'मत्स्य पुराण' में भगवान् विष्णु का कथन है कि जो कोई यह परिक्रमा श्रद्धा पूर्वक सम्पन्न करता है वह पितर सम्बन्धी सम्पूर्ण ऋण से मुक्त हो वांछित फल को प्राप्त करता है तथा अन्त समय में परम पद (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

परिक्रमा विषयक आवश्यक निदेश- अवधस्तव राज, गजेन्द्र मोक्ष, राम सहस्रनाम का पाठ करते धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिए। प्रदक्षिणा निमित्त पाँव बढ़ाने के पूर्व भक्त तीर्थली ब्राह्मण से आज्ञा ले कर स्नान करे। उस ब्राह्मण की यथाशक्य पूजन करे एवं भोजन करावे। अयोध्या यात्रा (परिक्रमण) के निमित्त घर से निकलने का महत्व बताते हुए कहा गया है-

यदा मतिं प्रकुरुते अयोध्यागमनं प्रति।
तदा नरकनिर्मुक्तो गावंति पितरो दिवि॥
पृ. ६

पदे पदेऽश्वमेधस्य यज्ञस्य लभते फलम्।,
पृ. ६

विघ्नमाचरते यस्तु अयोध्यां प्रति गच्छतः।
नरके मज्जते मूढः कल्पमासं तु रौरवे॥
पृ. ६

अयोध्या दर्शन का फल-

अयोध्यादर्शनं वस्तु करोति मनुजो यदि।
सप्तजन्मकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः॥
पृ. ७

यस्याः प्रभावमातुल्यं वेदा देवा शिवोह्यहं।
नहि वक्तुं समर्थोस्मो विष्णुश्च सगुणः पुमान्॥
पृ. ७

गोस्वामी तुलसीदास-

चारि प्रकार जग जीव अपारा।
अवध तजे तन नहिं संसार॥
चौपाई-
यद्यपि सब बैकुंठ बखानी।
वेद पुराण विदित जग जानी॥
अवध सरिस प्रिया मोहि न सोऊ।
यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ॥

अनेक जन्मों के अतुल पुण्य के प्रभाव से प्राणी को अवध यात्रा की विमल मति प्राप्त होती है। जैसे ही इस विमल मति का संधारण प्राणी मन में करता है, उसी समय उस प्राणी के नरकगत पितर हर्षोत्फुल्ल हो नरक के वज्र द्वार से बाहर निकल आते हैं। अवध (अयोध्या) यात्रा हेतु जब प्राणी पग (डग) बढ़ाता है, उसके एक-एक पग (डग) से मानो उसे एक-एक अश्वमेध यज्ञ का महत् दुर्लभ फल प्राप्त होने लगता है। परिक्रमा करते प्राणी से जो मधुर वाणी में बोलते हैं, जो उन्हें जूता, सवारी या भोजन जलपानादि उपलब्ध कराते हैं वे अमित पुण्य फलों के अधिकारी होते हैं। परन्तु जो यात्रा में व्यवधान (अवरोध) डालते हैं वे एक कल्पतक रौरव नरक में रहते हैं।

अवधवास का फल- सौ वर्ष अग्निहोत्र करने का जो फल है वही एक रात्रि अवधवास का फल है। साठ हजार वर्ष काशी का जो फल है, वही आधा निमिष अवध वास का फल है। निचोड़ रूप से कहा जा सकता है कि अवध (अयोध्या) की प्रशंसा और माहात्म्य शब्दातीत है, अवर्णनीय है।

अयोध्या में गुप्तहरि, चक्रहरि, विष्णुहरि नामक सात स्थान हैं, जो अवधबिहारीजी को वैकुंठ से भी अधिक प्यारे हैं। इन्हें रूढ़ रूप में 'सप्तहरि' स्थान कहा जाता है।

अयोध्या (अवध) की मुख्यत: पाँच परिक्रमाएँ विविध पुराणों में निदेशित हैं, जो सार रूप में निम्न प्रकार हैं-

प्रथम परिक्रमा-

यह परिक्रमा स्वर्गद्वार से आरम्भ होती है और चन्द्रहरि, धर्महरि, जानकीतीर्थ, हनुमान् कुंड, जन्मस्थान, सीता-रसोई, सुमित्रा-भवन, रसोई-कुंड, दशरथ-कुंड, कौशल्या-कुंड, वसिष्ठ-कुंड, ऋण-मोचन, पाप-मोचन आदि प्रसिद्ध स्थानों से होती हुई, सहस्रधारा पर आकर समाप्त होती है।

द्वितीय परिक्रमा-

यह परिक्रमा वैतरणी, घोषार्क, रतिकुंड, शीतलादेवी, इन्द्रकुंड, निर्मली-कुंड, गुप्तहरि स्थान, गुप्तार-तीर्थ, यमस्थल आदि प्रसिद्ध स्थानों से होती हुई दुर्गाकुंड पर आकर समाप्त होती है।

तीसरी परिक्रमा-

यह परिक्रमा, नरग्राम से आरम्भ होकर त्रिपुरारि महादेव, शृंगी ऋषि का स्थान, भरतकुंड, नन्दी ग्राम, शत्रुघ्नकुंड, पिशाचमोचन, मानसर, तमसा तीर, माण्डव्य स्थान, प्रमोदक वन, गौतमी ऋषि, च्चवन ऋषि, सीता कुंड, राम कुंड, भैरव स्थान, हनुमान् कुंड, विभीषण कुंड, घृताची कुंड, अगस्त सर, मख स्थान, राम रेखा नदी आदि स्थानों से होती हुई रामतीर्थ पर आकर समाप्त होती है।

चतुर्थ परिक्रमा-

यह परिक्रमा हरिवासर ( ) या भाद्र शुक्ल एकादशी को करनी चाहिए। प्रात: स्वर्गद्वार में स्नान कर जन्मस्थान जाकर श्रीहरि का पावन दर्शन करना चाहिए। तत्पश्चात् चक्रतीर्थ से परिक्रमा आरम्भ कर ब्रह्मकुण्ड, ऋणमोचन, सहस्रधारा पर आकर पुन: स्नान कर परिक्रमा समाप्त करनी चाहिए।

पंचम परिक्रमा-

इस परिक्रमा के लिए कोई विशेष तिथि-वासर आदि निर्दिष्ट नहीं हैं। वसिष्ट, याज्ञवल्क्य, उद्दालक, भार्गव, शांडिल्य, ब्रह्मर्षि-राजर्षि जनक आदि ऋषिश्रेष्ठों ने यह परिक्रमा की थी। रामतीर्थ में स्नान कर परिक्रमा का प्रारम्भ विल्बहरि से किया जाता है। विल्बहरि, पुण्यहरि, सीताकुंड, दुग्धेश्वर नाथ (दुग्धकुंड), आस्तिक मुनि का स्थान, च्यवन ऋषि का स्थान, जम्बू तीर्थ, गोकुला ग्राम, रामरेखा नदी, शृंगी ऋषि आदि प्रमुख स्थानों से होते हुए भक्त वाल्मीकि स्थान पर आकर प्रदक्षिणा समाप्त करते हैं।

मिथिला की परिक्रमा-

ऋषि-मुनियों, सिद्ध-संतों की तपोभूमि भारत में मिथिला क्षेत्र की अपनी एक विशिष्ट पहचान है। यहाँ विद्यापति, मंडन मिश्र प्रभृति अनेक विद्वानों ने जन्म ग्रहण किया है। यहाँ की बोली, सभ्यता-संस्कृति प्रतिष्ठा के साथ महिमामंडित है।

बृहद्विष्णु-पुराण, रुद्रयामल तीर्थचिन्तामणि आदि ग्रन्थों के आधार पर पं० श्रीकृष्ण ठाकुर नामक प्रसिद्ध मैथिल विद्वान् ने 19वीं शती के उत्तरार्द्ध में मिथिला-तीर्थ-प्रकाश नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इसका प्रकाशन राज दरभंगा के प्रेस से 1887 ई0 में हुआ था। इस ग्रन्थ पर बाबू तुलापति सिंह की

भूमिका लिखी हुई है। ग्रन्थ की सभी प्रतियों पर उनका हस्ताक्षर भी उपलब्ध है।इस ग्रन्थ में मिथिला के चालीस तीर्थों और देवालयों का विस्तृत विवेचन है। विभिन्न पुराणों से सम्बद्ध वचनों और वहाँ कर्तव्य कर्मकाण्डों का भी उल्लेख किया गया है। ग्रन्थ की विशेषता है कि निवन्धकार ने स्वयं उन स्थानों पर जाकर इसकी रचना की है। यह ग्रन्थ अव दुर्लभ हो गया है। इसमें श्री ठाकुर ने मिथिला की तीनों परिक्रमा का विशद विवेचन किया है। यहाँ पर इसी ग्रन्थ से सभी उद्धरण लिये गये हैं।

मिथिला में भी परिक्रमा की एक सुदीर्घ परम्परा है। मिथिला में तीन तरह की परिक्रमा/ प्रदक्षिणा ख्यात है- (क) बृहती (ख) मध्यमा (ग) लघ्वी।

अथ परिक्रमा।।

सा च मार्गशीर्षादिषण्मासेषु कार्य्या।।
तथा चोक्तं यामलसारोद्धारे।।
मार्गशीर्षादयो मासाः षडुक्ताः स्युः प्रदक्षिणे।।

अस्यास्त्रैविध्यं तद्भेदेन फलभेदश्चोक्तो यथा बृहत् विष्णुपुराणे।।

परिक्रमापि त्रिविधा बृहती मध्यमा लघुः।
मार्गशीर्षेथ वा माघे फाल्गुने माधवेपि वा।।
परिक्रमा प्रकर्त्तव्या नदीमारभ्य कौशिकीम्।
ब्रह्मचर्य्यविधानेन हविष्याशीर्जितेन्द्रियः।।
शुद्धं द्विवासको भूत्वा भक्तवृन्दैः समन्वितः।
सिंहेश्वरं शिवं नत्वा ध्यात्वा देवं रघूत्तमम्।।
संकल्पमादितः कृत्वा परितः परिसंक्रमेत्।
कौशिकीसंगमे स्नात्वा संक्रमेज्जाह्नवीतटे।।
शालग्रामीं लभेद्यावत् तावद् वै पश्चिमामुखः।
पुनर्हैमवतप्रान्तं पुनस्तु कौशिकीतटम्।।
नत्वा कामेश्वरं लिङ्गं पुनः सिंहेश्वरं व्रजेत्।
समाप्य नियमं तत्र पुनरायात् स्वमालयम्।।
मनोवाक्कायजनितं पातकं चोपपातकम्।
सर्व्वं नश्यत्यत्नेन सर्व्वान् कामानवाप्नुयात्।।
प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रीयन्तेतस्य देवताः।
प्रीयते राघवो रामः स्वशक्त्या सीतया सह।।
कल्याणेश्वरमारभ्य निवसेद् गिरिजालये।
पुनर्ज्जलेश्वरं गत्वा पुनः क्षीरेश्वरं व्रजेत्।।
विश्रम्य धनुषः स्थाने पुनः कल्याणपीठके।
एवं पञ्चाह्निकी प्रोक्ता मिथिलायाः परिक्रमा।।
प्रलापं वा विलापं वा मिथ्याभाषणमेव वा।
असद्वार्त्तादिकं सर्व्वं वर्ज्जयेत् साधकोत्तमः।।
पूर्व्वोक्तविधिना सम्यक् ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थितः।
परिक्रान्तो भवेद् भुक्तिं लोके मुक्तिं तथा परे।।
मध्यमा सा भवेद्यात्रा सर्व्वाघौघनिवारिणी।
गंगासागरमारभ्य स्नानयात्रां समाचरेत्।।
धनुःक्षेत्रं पुनः स्नात्वा पुरन्दरसरो व्रजेत्।
कौशलेन्द्रसरो गत्वा स्नात्वा वै जानकीह्रदे।।
वह्निकुण्डं समागत्य मध्यमं कुण्डमाव्रजेत्।
रत्नसागरमागत्य कौण्डिल्यस्य सरो व्रजेत्।।
अङ्गरागाभिधं तीर्थं गत्वा वै साधकोत्तमः।।
पुनर्ल्लक्ष्मणकुण्डे तु गत्वा गङ्गासरः पुनः।
स्नानादिकं विधायेत्थं लोकपूज्यो भवेन्नरः।।
सर्व्वसिद्धिमवाप्नोति जनः प्रक्षीणकल्मषः।।

जैसा कि यमल सारोद्धार में कहा गया है, परिक्रमा मार्गशीर्षादि छह (छः) मासों (अगहन, पूस, माघ, फागुन, चैत, वैशाख) में करनी चाहिए।

यह प्रदक्षिणा बृहद् विष्णुपुराण में फल भेद से तीन प्रकार की है- बृहती, मध्यमा, लघु। अगहन, माघ, फागुन और वैशाख आदि मासों में यह परिक्रमा ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करते हुए हविष्यान्न ग्रहण कर जितेन्द्रिय हो कौशिकी नदी से आरम्भ करनी चाहिए। शुद्ध द्विवास (दो वस्त्र) धारण कर, भक्तवृन्द से युक्त होकर, सिंहेश्वर शिव को प्रणाम कर तथा श्रीराम का ध्यान कर संकल्पपूर्वक परिक्रमा करनी चाहिए। परिक्रमा हेतु संकल्पवान् व्यक्ति कौशिकी संगम पर स्नान

कर जाह्नवी तट (गंगा) की ओर बढ़ते हुए शालिग्रामी को प्राप्त कर पश्चिम की ओर प्रस्थान करे। पुनः हैमवत प्रान्त आकर फिर कौशिकी तट की ओर प्रस्थान कर कामेश्वर लिङ्ग को प्रणाम कर सिंहेश्वर स्थान की ओर बढ़े। यहाँ विधि विधान से अपने (यात्रार्थ) नियम को समाप्त कर अपना घर आए।

ऐसा करने से मन, वाक् और काय जनित सभी पातक-उपपातक विना प्रयत्न ही नष्ट हो जाते हैं और सभी कामनाएँ पूरी होती हैं। सभी पितर प्रसन्न होते हैं, सभी देवता प्रसन्न होते हैं, और शक्ति स्वरूपा सीता सहित राघव राम प्रसन्न होते हैं।

(अब पुनः) यात्रा कल्याणेश्वर (स्थान) से आरम्भ करनी चाहिए और किसी गिरिजालय में निवास करना चाहिए। फिर जलेश्वर (शिव स्थान) जाकर क्षीरेश्वर (विष्णु) स्थान की ओर बढ़ना चाहिए। बाद धनुः स्थान एवं कल्याण पीठ पर विश्राम करना चाहिए।

यह पञ्चाह्निक (पाँच दिनों की) मिथिला की परिक्रमा का विधान कहा गया है। परिक्रमा करते समय प्रलाप, विलाप, मिथ्या भाषण और असद्वार्ता आदि उत्तम साधक पुरुष नहीं किया करते हैं बल्कि ब्रह्मचर्य्यव्रत का पालन भरपूर निष्ठा से करते हैं। ऐसा करने से भुक्ति और मुक्ति दोनों की प्राप्ति होती है।

मध्यमा यात्रा सभी पापों को नष्ट करनेवाली होती है। यह यात्रा गंगासागर से आरम्भ होती है, इस कारण यह 'स्नान यात्रा' कही जाती है। फिर 'धनुः क्षेत्र' में स्नान कर पुरन्दर सर को जाना चाहिए। बाद वहाँ से 'कौशलेन्द्र सर' और 'जानकी ह्रद' में स्नाकर 'वह्नि कुंड' आकर 'मध्यम कुंड' की ओर बढ़ना चाहिए। पुनः 'रत्न सागर' आकर 'कौण्डिल्य सर' को जाना चाहिए। ऐसा कर उत्तम साधक अंग राग नामक तीर्थ और लक्ष्मण कुंड जाकर गंगासर में स्नान करे जिनसे वह संसार में पूज्य होता है, उसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और उसके सारे पाप नष्ट होते हैं।

(क) बृहत्यां परिक्रमायाम्॥

हविष्याशी ब्रह्मचारी द्विवासको भूत्वा सिंहेश्वरं शिवं संपूज्य कुशादिकमादाय अद्य मार्गे माघे फाल्गुने माधवे वा मासीत्यादि मनोवाक्कायजनितपात- कोपपातकक्षय- सर्व्वकामावाप्ति- पितृदेवादिगण- ससीत श्रीरामप्रीतिकामोऽद्यारभ्य यथाकालं मिथिलायाः बृहतीं परिक्रमामहं करिष्य इति संकल्प्य कौशिक्यभिमुखं व्रजेत्।

ततः कौशिकीसङ्गमे स्नात्वा जाह्नवीतटेन पश्चिमाभिमुखं गच्छेत्। ततः शालग्रामीनद्यां स्नात्वा उत्तराभिमुखं व्रजेत्। ततो हैमवतवनप्रान्तं गच्छेत्। पुनः कौशिकीतटे गत्वा स्नात्वा कामेश्वरलिंगं संपूज्य पुनः सिंहेश्वरं पूजयित्वा स्वमालयं गच्छेत्॥

वृहती परिक्रमा-

द्विवासक (दो वस्त्र) होकर हविष्यान्न ग्रहण कर सिंहेश्वर शिव की पूजा करे एवं हाथ में कुश आदि (काला तिल, जल) लेकर 'अद्य मार्गे 'मासे... करिष्ये।'' ऐसा संकल्प कर कौशिकी की ओर प्रस्थान करे।

(ख) मध्यमपरिक्रमायाम्॥

कल्याणेश्वरं गत्वा संपूज्य

कुशादिकमादाय अद्य मार्गे माघे फाल्गुने माधवे वा मासीत्यादि। भुक्तिमुक्ति-प्राप्तिसर्व्वपापनिवारण कामोऽद्यारभ्य यथाकालं मिथिलायाः मध्यमां परिक्रमामहं करिष्य इति संकल्प्य व्रजेत्। ततो गिरिजालये गत्वा गिरिजां सपूज्य निवसेत्। ततः प्रातः स्नात्वा जलेश्वरं गत्वा संपूज्य क्षीरेश्वरं व्रजेत्। तं संपूज्य धनुषः स्थाने गत्वा प्रणम्य पुनः कल्याणेश्वरं गत्वा संपूज्य स्वमालयं गच्छेत्॥

<u>मध्यमा परिक्रमा-</u>

कल्याणेश्वर जाकर पूजा करे एवं हाथ में त्रिकुशा, काला तिल, जल लेकर 'अद्य मार्गे माघे... परिक्रमामहं करिष्ये' ऐसा संकल्प करे। बाद पार्वती मन्दिर जाकर पार्वती की पूजा करे और वहाँ रात्रि विश्राम करे। प्रातः जलेश्वर जाकर स्नान करे, पूजा करे और क्षीरेश्वर की ओर प्रस्थान करे। वहाँ धनुष् स्थान पर जाकर प्रणाम करे एवं पुनः कल्याणेश्वर जाकर पूजा करे तथा अपने वास गृह की ओर गमन करे।

(ग) लघुपरिक्रमायाम्॥

गंगासागरे स्नात्वा कुशादिकमादाय अद्य मार्गे माघे फाल्गुने माधवे वा मासीत्यादि। गतकल्मषात्मीयलोकपूज्यत्वभवनसर्व्वसिद्धवाप्तिकामो मिथिलायाः लघ्वीं परिक्रमामहं करिष्य इति संकल्प्य व्रजेत्। ततो धनुःक्षेत्रे स्नात्वा पुरन्दरसरसि स्नायात्। ततः कौशलेन्द्रसरसि स्नात्वा जानकीह्रदे स्नायात् ततोऽग्निकुण्डे मार्ज्जनं कृत्वा मध्यमकुण्डे मार्ज्जयेत् ततो रत्नसागरे स्नात्वा कौण्डिल्यसरसि स्नायात्। ततोऽङ्गरागसरसि स्नात्वा लक्ष्मणकुण्डे मार्ज्जयेत्। ततो गंगासागरे स्नात्वा स्वमालयं गच्छेत्॥

<u>लघु परिक्रमा-</u>

गंगा सागर में स्नान कर हाथ में त्रिकुशा, काला तिल, जल लेकर ''अद्य मार्गे माघे... परिक्रमामहं करिष्ये' ऐसा संकल्प करे। बाद धनुः क्षेत्र जाकर 'पुरन्दर सर' में स्नान करे। फिर 'कौशलेन्द्र सर' में स्नान कर 'जानकी ह्रद' में स्नान करे। बाद अग्नि-कुंड' में मार्ज्जन (स्नान) करके 'मध्यम कुंड' में मार्ज्जन करे फिर 'रत्न सागर' में स्नान कर 'कौण्डिल्य सर' में स्नान करे। पुनः अङ्गराग, लक्ष्मण कुंड और गंगा सागर में स्नान कर अपने घर को प्रस्थान करे। संक्षेप मे-धनुक्षेत्र-पुरन्दर सर-कौशलेन्द्र सर-जानकी ह्रद-अग्नि कुंड-मध्यम कुंड-रत्नसागर-कौण्डिल्य सर-अङ्गराग-लक्ष्मण कुंड-गंगा सागर लघु परिक्रमा के स्थान हैं।

यामलसारोद्धारे।
श्रीशिव उवाच॥

परिक्रमाविधिं वक्ष्ये सावधानमनाः शृणु।
येन विज्ञानमात्रेण कृतकृत्यो भविष्यसि॥
सीतां रामञ्च सौमित्रिं पश्येत् सौवर्णमण्डपे।
क्षीराब्धिमूर्त्तिमालोक्य जनकं स्फटिकालये॥
ब्रह्माणं कमलानाथं मां च पश्येत् त्रिकोष्टके।
सावित्रीं च श्रियं गौरीं हनूमन्तं निधिद्वयम्॥
रंगागारं ततो गच्छेत् ततो गछेन्महानसम्।
सुरालयं ततो गच्छेत् ततः कोषगृहं पुनः॥
लक्ष्म्याकरगृहं प्राप्य लीलारामं गृहं ततः।
नर्म्मवेश्म ततो गच्छेन्नृत्यागारं ततो व्रजेत्॥
वर्ज्जयेदनृतां वाणीं तेषु सिद्धिर्व्विलोकयेत्।
मण्डलानि ततो गच्छेत् तत्त्वानि प्रविलोकयेत्॥
तेषु स्थानानि पश्येच्च सप्तर्षीणां ततः पुनः।
अष्टदेवीर्व्विलोक्याथ सार्द्धक्रोश बहिर्बहिः॥
परिक्रम्य ततो गत्वा मण्डपं प्रणतोऽभवत्।
देवालये गणेशानं नर्म्मागारे महेश्वरम्॥
ब्रह्मस्थाने हनूमन्तं भैरवं तत्समीपतः।
तीर्थयात्राप्रसंगेन तत्र तत्र विलोकयेत्॥
स्नानाभावेऽभिषेकन्तु इष्यते जलवारिणा।

ज्ञानं नैवातिवर्न्तत तीर्थयात्राफलाप्तये॥
शिलानाथाभिधं पूर्व्वे याम्ये गाण्डीवकेश्वरम्।
उत्तरे तुजलाधीशं वारुणे तुजलेश्वरम्॥
गिरिजाख्या महामाया भवपाशविनाशिनी।
तामाराध्य विधानेन कृतकृत्यो भवेन्नरः॥
यात्रामेवं विधानेन कृत्वा विप्रांश्च भोजयेत्।
सन्तुष्टाँब्राह्मणानाञ्च यात्रा स्यात् सफला ध्रुवम्॥
प्रदक्षिणे कृतेत्वेवं सप्तलोकी परिक्रमः।
भवेदेव न संदेहः सत्यं प्रतिशृणोमि ते॥
कृते प्रदक्षिणे त्वेवं शृणुयाद्यत् फलं भवेत्।
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च॥
पौण्डरीकसहस्राणि प्रतिपादमवाप्नुयात्॥

कुशादिकमादाय अद्येत्यादि। सप्तलोक-प्रदक्षिणभवनजन्यफल- प्रतिपदाश्वमेध-सहस्रजन्य-फलवाजिपेयशतज न्यफल पौण्डरीक -सहस-जन्यफलसम- फलमाप्तिकामोऽद्यारभ्य यथाकालं मिथिलायाः परिक्रमामहं करिष्य इति संकल्प्य। मण्डपे सीतां रामं लक्ष्मणं च पश्येत्। ततः क्षीराब्धिमूर्त्तिमवलोक्य स्फटिकालये जनकमवलोकयेत्। ततस्त्रिकोष्टके ब्रह्माणं विष्णुं शिवं चावलोक्य हनूमन्तं भैरवं च पश्येत्। ततः सावित्रीं लक्ष्मीं गौरीं निधिद्वयं चावलोकयेत्। ततो रंगागारं गत्वा महानसं गत्वा सुरालयं गच्छेत्। ततः कोषगृहमभिगम्य लक्ष्म्याकरगृहं गच्छेत्। ततो लीलारामगृहं गत्वा नर्म्मगृहं गच्छेत्। तत्र महेशमवलोक्य नृत्यागारं व्रजेत्। ततोऽष्टसिद्धीर्व्विलोक्य मण्डलेषु सप्ततत्त्वानि विलोकयेत्। तत्र सप्तर्षीणां स्थानानि पश्येत्। ततो ब्रह्माण्याद्यष्टदेवीः पश्येत्। देवालये च गणेशं पश्येत्। ततः पूर्वदिशि शिलानाथलिंगमभ्यर्च्य दक्षिणादिशि गाण्डीवकेश्वरमभ्यर्च्य उत्तरदिशि जलाधीशमभ्यर्च्य पश्चिमे जलेश्वरलिंगमभ्यर्च्य महामायां गिरिजां संपूजयेत्। अत्र यथा प्रसंगप्राप्तनदीषु स्नानम्। असामर्थ्येऽभिषेको वा कर्तव्यः। ततो मण्डपं गत्वा प्रणम्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वमालयं गच्छेदिति संक्षेपतः परिक्रमाविधिः॥

यामलसारोद्धार में श्री शिव का कथन इस प्रकार है:-

परिक्रमा विधि- अब यहाँ परिक्रमा का विधान कहा जा रहा है। ध्यान पूर्वक सुनें क्योंकि उसके ज्ञान मात्र से ही प्राणी धन्य-धन्य हो जाता हे। सीता, राम और सौमित्रि (लक्ष्मण) के सोने की मूर्ति का दर्शन मण्डप में करे। क्षीर समुद्र की मूर्ति को देखे एवं जनक का स्फटिकालय में दर्शन करे। ब्रह्मा, विष्णु और शिव को त्रिकोष्टक में देखे। सावित्री, गौरी, लक्ष्मी, हनुमान् तथा दो निधियों को भी उसी त्रिकोष्टक में देखे। बाद रंगागार जान कर महानस (रसोई घर) जाना चाहिए। बाद देव मन्दिर जाना चाहिए फिर कोष गृह (भण्डार) जाना चाहिए। बाद लक्ष्मी गृह (खजाना) जाना चाहिए और बाद पुनः लीलाराम जाना चाहिए। बाद नर्म्म वेश्म और नृत्यागार जाना चाहिए। सिद्धि कामी परिक्रमा करता हुआ व्यक्ति असत्य वाणी नहीं बोले। वाद परिक्रमा के अन्य तत्वों को देखते हुए आगे बढ़ना चाहिए। उन स्थानों को देखे और सप्तर्षियों को देखे। बाद परिक्रमा कर मण्डप जाकर प्रणाम करना चाहिए। यात्रा करते समय देवालय में गणेश को (ईशान कोण पर) नर्म्मागार में शिव को, ब्रह्मस्थान में हनुमान् को और उनके समीप भैरव को देखे।

स्नानाभाव में (पूर्ण स्नान नहीं करने पर) थोड़े जल से अभिषेक कर ले। तीर्थ यात्रा करनी चाहिए लेकिन फल प्राप्ति की ओर विशेष ध्यान नहीं देना चाहिए। पूरब में शिला नाथ, दक्षिण में कृष्ण गाण्डीवकेश्वर, उत्तर में जलाधीश पश्चिम में जलेश्वर (शिव) तथा गिरिजा (पार्वती) एवं भव वंधन को नष्ट करने वाली महामाया की

आराधना कर मनुष्य कृतकृत्य (धन्य-धन्य) हो जाता है। विधान पूर्वक यात्रा करनी चाहिए और ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। ब्राह्मण जब संतुष्ट होते हैं तो निश्चिततया यात्रा सफल होती है। इस प्रकार की प्रदक्षिणा सप्तलोकी परिक्रमा मानी जाती है, इसमें कोई संदेह नहीं है। ऐसी परिक्रमा से पग-पग पर हजार अश्वमेघ, सौ वाजणेय, हजार पौण्डरीक यज्ञों का फल प्राप्त होता है।

हाथ में त्रिकुशा (काला तिल, जल) लेकर संकल्प करना चाहिए (अद्येत्यादि सप्तलोक प्रदक्षिणा... परिक्रमामहं करिष्ये) मण्डप में सीता, राम और लक्ष्मण को देखे। बाद क्षीराब्धिमूर्ति क्षीर सागर में शेष शय्या पर सोए विष्णु की मूर्ति को देखकर स्फटिकालय श्वेत प्रस्तर निर्मित मंदिर में जनक को देखे। बाद त्रिकोष्टक में ब्रह्मा, विष्णु और शिव को देखकर हनुमान् और भैरव को देखे। बाद सावित्री, लक्ष्मी और दो निधि को देखे। बाद रंगागार जाकर, महानस (रसोई घर) और तब देवालय जाना चाहिए। बाद कोष कक्ष (लक्ष्म्याकर) जाए पुनः लीलाराम गृह जाकर नर्भ्भ गृह जाए। वहाँ शिव को देखकर नृत्यागार जाए। बाद अष्ट सिद्धि को देखकर मण्डलों में सातो तत्वों को देखे। वहाँ सप्तर्षियों के स्थानों को देखे एवं ब्रह्माणी आदि आठ देवियों को देखे। देवालय में गणेश को देखे। बाद पूरब दिशा में शिवलिंग की पूजा कर, दक्षिण दिशा में गाण्डीवकेश्वर उतर में जलाधीश एवं पश्चिम में जलेश्वर लिंग (शिवलिंग) महाभाया गिरिजा की पूजा करे। यात्रा क्रम में प्राप्त नदियों में स्नान करे। यदि स्नान करने में असमर्थ हो तो अभिषेक (देह पर जल छिड़कना और मंत्र स्नान) करना चाहिए। बाद मण्डप जाकर प्रणम्य (प्रणाम करने योग्य) ब्राह्मण को भोजन करा कर अपने घर को जाना चाहिए। समापतः परिक्रमा की ये ही विधि याँ हैं।

(१) सोमवती अमावस्या)- जिस किसी भी सोमवार को अमावस्या तिथि पड़ती हो, स्त्रियाँ उस दिन बड़े नेम-धर्म से विष्णु सहित पिप्पल (अश्वत्थ) वृक्ष की 108 बार परिक्रमा करती हैं प्रत्येक फेरे के साथ सूत लपेटती हैं एवं छोटे फल का एक दाना (मूँगफली, किसमिस, अंगूर आदि) वृक्ष के चरणों पर अर्पित करती जाती हैं। मेरी समझ से 108 दाने डालने से तात्पर्य है, फेरे की संख्या न्यूनाधिक न हो। फेरे की संख्या ठीक-ठीक स्मरण में रहे।

(२) वट वृक्ष की परिक्रमा (वट सावित्री पूजा)- ज्येष्ठ मास की अमावस्या तिथि को स्त्रियाँ सूता लपेटती हुई वट वृक्ष के सात फेरे लगाती हैं। स्त्रियाँ सावित्री-सत्यभान की कथा व्रत पूर्वक सुनती हैं एवं पूजा करती हैं। कहीं-कहीं पति-पत्नी मिलकर परिक्रमा करते हैं। फल-मिठाइयों से भरीं 14 डालियाँ वट-वृक्ष देवता को समर्पित की जाती हैं।

(३) आँवला वृक्ष की परिक्रमा (अक्षय नवमीं)- कार्तिक शुक्ल नवमीं तिथि को स्त्रियाँ सविध आँवला वृक्ष की पूजा करती हैं। फेरे देती हैं तथा गुप्त दान करती हैं। गुप्त दान के लिए भूआ (कूष्मांड) के फल में छेद कर यथा शक्य स्वर्ण (सोना) या अन्य कोई कीमती धातु का टुकड़ा डाल दिया जाता है ताकि ग्रहीता (पुरोहित) को इसका आभास न हो कि इसमें कितना और क्या डाला गया है। मुदित हो पुरोहित इसे स्वीकार करते हैं। स्त्रियाँ उनकी पूजा कर अक्षय नवमीं कथा का श्रवण करती हैं। ऐसा प्रचलन है कि स्त्रियाँ हाँथ में अक्षत लेकर ही दत्तचित्र हो कथा-श्रवण करती हैं।

(4) **माता-पिता की परिक्रमा**- पुराण समर्थित देवगण नायक गणेश की प्रथम-पूजा हिन्दू समाज में अत्यन्त ही प्रसिद्ध है। अतः यहाँ कथा का विस्तार देना सर्वथा अनुचित होगा। हाँ, संक्षेप में कथा-सार इस तरह है। यज्ञ, पूजा, अनुष्ठानादि अवसरों पर प्रथम पूजा किस देवता की हो, इसके निराकरण के लिए एक प्रतियोगिता रखी गई कि''पृथ्वी की परिक्रमा निर्दिष्ट समय से आरम्भ कर पहले जो पूरी कर लेंगे, वही प्रथम पूजा के मान्य अधिकारी होंगे''- विषय बड़ा संघर्षशील एवं मन-बुद्धि को झकझोर देने वाला था। यथा समय प्रतियोगिता आरम्भ हुई। प्रतिभागी देवताओं ने अपने-अपने वाहन पर आरूढ़ हो उड़ानें भरीं। गणेश स्थिर भाव हो अपने मूषक के बलाबल, फल-प्रतिफल पर विचार करने लगे। समय काफी बीत गया। अन्त में उन्होंने एक स्वस्थ निर्णय लिया। गणेश अपने मूषक पर सवार हो, अपने पूज्य माता-पिता की ही परिक्रमा कर निश्चिन्त हो गए। अब अन्य प्रतिस्पर्धी सभी देवता जब कभी भी आगे रास्ते पर सतर्क नजर डालते, चूहे का पुरीष (विष्ठा, लेढ़ी) आगे दीख पड़ता। मतलब साफ है, गणेश सबसे आगे निकल गए। प्रतियोगिता की घोषणा हुई। गणेश विजयी हुए। यह माता-पिता की प्रदक्षिणा का ही चमत्कार है।

परिक्रमा सम्बन्धी कुछ विशेष ध्यातव्य बातें-

यानि कानि च पापनि जन्मातरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिणं पदे पदे॥

उपर्युक्त श्लोक प्रदक्षिणा का सर्वस्वीकृत श्लोक है। जहाँ अन्य कोई श्लोक उपलब्ध न हो, वहाँ यह श्लोक सर्वथा, सब दृष्टि से उपयुक्त है।

(ख) परिक्रमा/प्रदक्षिणा जहाँ से प्रारम्भ की जाती है, समापन भी वहीं आकर करनी चाहिए।

(ग) परिक्रमा/प्रदक्षिणा सदा ही दक्षिणावर्त (दाहिनी) होती है। यथा- यदि किसी मन्दिर की परिक्रमा करनी है तो मन्दिर सदा ही हमारे दाहिने हाथ की ओर पड़े।

(घ) परिक्रमा मौन होकर करनी चाहिए।

(ङ) परिक्रमोपरान्त किसी देवस्थल/ देवमन्दिर/ देवमूर्ति के पास थोड़ी देर विश्राम आवश्यक है।

❖

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत्प्रभोः।
अपेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो न चापि कालो न च शुद्धतापि वै॥

(वैष्णवमताब्जभास्कर- 4:42)

अर्थात् सबलोग ईश्वर के चरणों में शरणागति के सदैव अधिकारी हैं; चाहे वे सबल या निर्बल हों। इसके लिए न तो कुल की, न बल की, न काल की और न ही शुद्धता की अपेक्षा है।